प्रह्लाद

(प्राच्यविद्याओं की त्रैमासिक शोध-पत्रिका)

सम्पादक

डा० विष्णुदत्त राकेश

एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट्०

प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

सयुक्त-सम्पादक

डा० विनोदचन्द्र सिन्हा

एम०ए०, पी-एच०डी०

प्रोफेसर तथा अध्यक्ष

प्राचीन भारतीय इतिहास, सस्कृति एव पुरातत्त्व विभाग

सितम्बर — १९८८

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रधान सरक्षक
श्री रामचन्द्र शर्मा
आई०ए०एस० (सेवानिवृत्त)
कुलपति

सरक्षक
श्री रामप्रसाद वेदालंकार
आचार्य एव उप-कुलपति

प्रकाशक
डा० वीरेन्द्र अरोड़ा
कुलसचिव

व्यवस्थापक
जगदीश विद्यालंकार
पुस्तकालयाध्यक्ष



प्रोफेसर के० सच्चिदानन्द मूर्त्ति, उपाध्यक्ष विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को शाल भेंट करते हुए कुलपति प्रोफेसर आर०सी० शर्मा।



दीक्षान्त के अवसर पर प्रख्यात शिक्षाशास्त्री डा० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, भू०पू० परिद्रष्टा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर 'वैदिक साहित्य, संस्कृति एवं समाजदर्शन' नामक ग्रन्थ का विमोचन करते हुए मुख्य अतिथि श्री वी०एन० देशपाण्डे, मुख्य न्यायाधीश (से०नि०) उच्च न्यायालय, दिल्ली। साथ में खड़े हैं (दाएँ से) श्री सोमनाथ मरवाह परिद्रष्टा, पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार तथा कुलपति श्री आर०सी० शर्मा।

आर० सी० शर्मा
आई०ए०एस० (अ०प्रा०)
कुलपति

कार्यालय : ६४८
निवास : २३५
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार–२४९ ४०४

दिनांक : २५-७-१९८८

संदेश

प्रिय आचार्यगण एवं ब्रह्मचारियो !

विश्वविद्यालय के नवसत्र के प्रारम्भ होने पर आपका स्वागत करता हूँ। आशा है, आप लोग इस राष्ट्रीय सस्था के सस्थापक कुलपिता स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के बताए मार्ग पर चल कर, इस सस्था के सम्मान की वृद्धि करने मे तन-मन से तत्पर होंगे। नैतिक दायित्व, सामाजिक हित और निजी जीवन के निर्माण की प्रेरणा विवशता मे नही, अन्दर से उद्भूत होनी चाहिए। मनुष्य के निजत्व की चिन्ता से बढकर मानवमात्र की शक्तिमत्ता की खोज एक बडा लक्ष्य है। विशाल ज्ञान, विराट चिन्तन, सार्वभौम धर्म, उज्ज्वल चरित्र, कर्मठता और अडिग निश्चय, व्यक्ति को महान बनाते हैं। अपने देश, समाज और जनसमूह की आशा-आकाँक्षाओ के अनुरूप अपने को सक्षम बनाना ही शिक्षा का सर्वोच्च ध्येय है। महर्षि दयानन्द, महात्मा गाँधी, महात्मा श्रद्धानन्द, महर्षि अरविन्द, महाकवि टैगोर और महामना मालवीय जी ने भारतीय जीवन-दर्शन के जिन सूत्रो की ओर शिक्षाविदो का ध्यान आकृष्ट किया है, उनमे सास्कृतिक अध्यात्म, सार्वभौम चेतना, राष्ट्रप्रेम और निजी जीवन का उन्नयन प्रमुख स्थान रखते है। मेरी इच्छा है कि साम्प्रदायिक, भाषिक और राजनीतिक एकागिता से मुक्त होकर, आप अपने जीवन मे शाश्वत मानवमूल्यो और आर्य-संस्कारो को सजोएँ। विश्वविद्यालय में आकर भी यदि 'विश्व-चेतना' का उदय न हो सका तो समझ लीजिये सारा श्रम व्यर्थ हो गया।

वेद भगवान का यह उपदेश सदैव याद रखिए—हम सबके साथ सहयोग की भावना से काम करे। हमारे हृदय मे समता का भाव विकसित हो। हमारा चिन्तन, सकल्प और क्रियाकलाप एक लक्ष्य के लिए हो। हमारे जीवन मे देश, जाति, धर्म, वर्ण, वर्ग तथा भाषा आदि की सकीर्णताएं न उत्पन्न हो। हमारे राष्ट्र और समाज मे शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आर्थिक सम्पन्नता हो। इस सम्पन्नता मे सब भागीदार हो। सब सुखी और नीरोग

हो। हम रूढिमुक्त समाज के उत्थान और अपने जीवन को महान बनाने के लिये सच्चे ज्ञान की खोज में लगे रहें—

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः
समानमस्तु वो मनो यथा व सुसहासति।

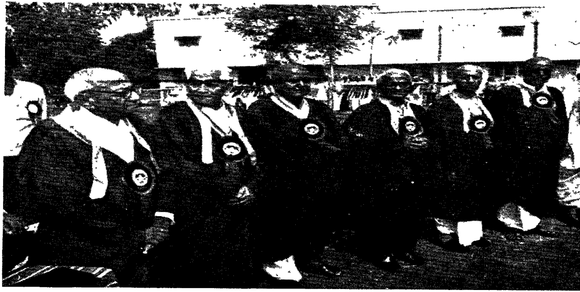
आप लोगो के लिए मगलकामनाएँ। विश्वास करता हूँ कि आप लाग दत्तचित्त होकर पठन-पाठन के कार्य मे जुट जायेगे तथा इस वर्ष पहले वर्षों की अपेक्षा और भी अधिक उपलब्धियाँ प्राप्त करेंगे।

आहिस्त ही गुनगुनाओ मेरे अश्आर,
डर है न मेरे ख्वाब कुचल जाएँ कही।

भवदीय

(रामचन्द्र शर्मा)

* विषय सूची *



दीक्षान्त-समारोह के उपलक्ष मे ध्वजारोहण के अवसर पर खडे है (बाएं से) कुलाधिपति डा० सत्यकेतु, परिद्रष्टा श्री सोमनाथ मरवाह, कुलपति श्री आर०सी० शर्मा, मुख्य अतिथि श्री देशपाण्डे, प्रो० रामप्रसाद, आचार्य तथा कुलसचिव डा० वीरेन्द्र अरोडा ।

वैदिक वन्दना

ॐ त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः
देवेभिर्मानुषे जने।

ऋ० ६, १६, १

अन्वय—अग्ने! त्वं यज्ञाना होता (असि)। विश्वेषा हित. देवेभिः मानुषे जने।

अर्थ— (अग्ने! त्व यज्ञाना होता) हे ज्ञानमय जगदीश्वर तू यज्ञो का—सभी श्रेष्ठ कर्मों का सम्पादन करने वाला है, सभी श्रेष्ठ कर्मों की प्रेरणा करने वाला है, तेरी अनुकम्पा से ही सब उत्तम कर्म सम्पन्न होते हैं। (विश्वेषा हितः) तू सदा सब का हित करने वाला है वा सब के भीतर विद्यमान रहने वाला है। (देवेभि मानुषे जने) तू अपने दिव्य गुण कर्म स्वभावो के साथ मननशील मानवो मे आ विराजमान हो—अर्थात् उपासकजनो मे साक्षात् अनुभव मे आ।

—श्री रामप्रसाद वेदालंकार

ज्ञानपुंज हे देव हुताशन, श्रेष्ठ कर्ममाला कर्त्ता,
सुम अनत यज्ञो के प्रेरक, जीवो के भर्त्ता, हर्त्ता।
भूतमात्र हितसाधन कर्त्ता, करुणाकर जग के स्वामी,
मननशील साधक के अनुभव, धर्ममार्ग के अनुगामी।
इस अगाध अज्ञान तिमिर मे ज्योति तरी दे पार करो,
चिदानद हे अन्तर्यामी, प्रेम-सुमन स्वीकार करो।

—डा० विष्णुदत्त राकेश

८८वाँ दीक्षान्त

१६ अप्रैल' ८८ को गुरुकुल विश्वविद्यालय मे वैदिक परम्परागत रीति से ८८वाँ दीक्षान्त-समारोह सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर शिक्षाविद् कुलपति श्री रामचन्द्र शर्मा ने वेद, कला और विज्ञान के स्नातकों की उपाधियाँ प्रदान कीं। पी-एच०डी० उपाधि मे अलकृत होने वाले शोधार्थी भी उपस्थित हुए। इस समारोह मे दीक्षान्त-भाषण देने दिल्ली उच्च न्यायालय के अवकाशप्राप्त मुख्य न्यायाधीश श्री वी०एस० देशपाण्डे पधारे। दीक्षान्त-सस्कार देखने के लिए सभागार मे उपस्थित जनसमुदाय को सम्बोधित करते हुए श्री देशपाण्डे ने कहा कि हमारे सविधान का मूलतत्व भारतीयता है क्योकि भारतीयता ही देश के विभिन्न धर्मों और वर्गों के लोगो के लिए एकता का एक सूत्र है। राष्ट्रीयता, एकता और अखण्डता के सूत्र मे हम अपने गौरवपूर्ण इतिहास और साँस्कृतिक परम्पराओ की विरासत के बल पर ही बँधे हुए है। इस एकता के सम्पादन मे धर्म की बडी भूमिका रही है। इसके लिए धर्म के सविधानसम्मतरूप और भारतीय धर्म साधनाओ और धारणाओ की मूलभावना को समझ लेना जरूरी है।

विद्वान् न्यायाधीश ने कहा कि सत्यबुद्धि से प्रेरित और ग्राह्य विवेक ही धर्म है, अत ऐसा धर्म भारतीय सविधान मे निहित एकात्मता की भावना का ही पोषक है। यदि हम अपनी शिक्षा का उपयोग इसी मूलभूत ऐक्य की प्राप्ति के लिए कर सके तो नवदीक्षित स्नातक मानवीय चेतनाधारा के अविभाज्य अग बनकर अपने नवोदित व्यक्तित्व से समाज का भला कर सकते है।

दीक्षान्त-भाषण से पूर्व गुरुकुल का ध्वज आगे रखकर नवस्नातको की शोभायात्रा निकाली गई जिसमे कुलसचिव, सन्यासीवृन्द, गुरुकुल के परिद्रष्टा, कुलाधिपति, मुख्य अतिथि, कुलपति, आचार्यगण तथा पूर्वस्नातको ने भाग लिया। मच पर दीक्षान्तयज्ञ सम्पन्न हुआ जिसमे कुलाधिपति डा० सत्यकेतु विद्यालकार, परिद्रष्टा श्री सोमनाथ मरवाह, कुलपति श्री शर्मा तथा मुख्य अतिथि श्री देशपाण्डे सहित शिक्षापटल, कार्यपरिषद्, शिष्टपरिषद् तथा आर्य प्रतिनिधि सभाओ के अधिकारियो ने भाग लिया।

दीक्षान्तभाषण से पूर्व स्वामी श्रद्धानद जी महाराज के शिष्य, अंग्रेजी, सस्कृत तथा हिन्दी मे विश्वविद्यालय स्तर पर वैदिक साहित्य, सस्कृति, समाजशास्त्र, दर्शन, आर्य

विचारधारा और होमियोपैथी के अनेक उत्कृष्ट ग्रथो के लेखक, राष्ट्रपति द्वारा समादृत सस्कृत विद्वान् एव पूर्व सांसद, कुलपति और परिद्रष्टा डा० सत्यव्रत सिद्धान्तालकार को परिद्रष्टा श्री मरवाह ने गुरुकुलीय शिक्षा के प्रतीकपुरुष के रूप मे उत्तरीय प्रदान कर सम्मानित किया। डा० सत्यव्रत के सम्मान मे प्रकाशित तथा उत्तर एव दक्षिण भारत के उच्चकोटि के विद्वानो की प्रशस्तियो से अलकृत एक बृहत् अभिनन्दन ग्रथ 'वैदिक साहित्य, सस्कृति और समाजदर्शन' का विमोचन माननीय न्यायाधीश श्री देशपाण्डे ने किया। इस ग्रथ के प्रेरक कुलपति श्री रामचन्द्र शर्मा तथा सरक्षक डा० सत्यकेतु विद्यालकार तथा श्री सोमनाथ जी मरवाह हैं। पद्मभूषण डा० शिवमगलसिंह सुमन, पद्मभूषण डा० अमृतलाल नागर, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास के श्री आर० शौरिराजन एव कर्नाटक-बगलौर विश्वविद्यालय के सकायाध्यक्ष डा० सरगू कृष्णमूर्ति इस ग्रथ के परामर्शमण्डल के सदस्य हैं। ग्रथ का सम्पादन गुरुकुल के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० विष्णुदत्त राकेश ने किया है। न्यायमूर्ति श्री देशपाण्डे ने करतल ध्वनि के बीच यह महत्वपूर्ण ग्रथ डा० सत्यव्रत जी को समर्पित किया। प्रो० सिन्हा के सम्पादन मे प्रकाशित, विश्वविद्यालय की पी-एच०डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत शोधप्रबधो के सारांशो का सकलन 'शोध सारावली' के नाम से परिद्रष्टा श्री मरवाह जी द्वारा विमोचित हुआ। उक्त दोनो ग्रथ स्वामी श्रद्धानद अनुसधान प्रकाशन केन्द्र से प्रकाशित हुए हैं। कुलपति श्री शर्मा ने हाल ही मे उक्त केन्द्र की स्थापना विश्वविद्यालय मे की है। इसके लिये अनुदान आयोग के अधिकारी धन्यवाद के पात्र है।

अनुदान आयोग के उपाध्यक्ष डा0 के0 सच्चिदानंद मूर्ति गुरुकुल पधारे

भारतीय दर्शनो के प्रकाण्ड विद्वान् तथा आध्र विश्वविद्यालय वाल्टेयर के पूर्व दर्शन विभागाध्यक्ष एवं सम्प्रति अनुदान आयोग के उपाध्यक्ष डा० के० सच्चिदानद मूर्ति २५ जून को अपनी उत्तराखण्ड यात्रा के दौरान गुरुकुल पधारे। डा० मूर्ति ने तत्ववाद, दर्शन, धर्म और राजनैतिक विचारधारा के तुलनात्मक अध्ययन के क्षेत्र मे ऐतिहासिक कार्य किया है। उनके ग्रन्थो मे 'रेवीलेशन एड रीजन इन अद्वैत वेदांत स्टडीज इन द प्राब्लम्स ऑफ पीस', 'मेटाफिजिक्स, मैन एण्ड फ्रीडम', 'इण्डियन फारन पोलिसी' 'द इन्डियन स्प्रिट', 'तेलगू इनसाइक्लोपीडिया', 'फिलोसफी एण्ड रिलीजन', 'समकालीन भारतीय दर्शन', 'करेंट ट्रेड्स इन इण्डियन फिलासफी (K R. Rao के सहयोग से) तथा 'रीडिंग्स इन इण्डियन हिस्ट्री, पोलिटिक्स एण्ड फिलासफी' प्रमुख है।

प्रो० मूर्ति का पुस्तकालय सभागार मे 'वैदिक साहित्य मे अद्वैत' विषय पर विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान हुआ। व्याख्यान से पूर्व प्रो० मूर्ति को कुलपति श्री शर्मा ने उत्तरीय प्रदान कर सम्मानित किया। समारोह की अध्यक्षता विश्वविद्यालय के

पूर्व परिद्रष्टा तथा भारतीय चिंतन के वयोवृद्ध विद्वान् डा० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार ने की। कुलपति श्री रामचन्द्र शर्मा ने विद्वान् वक्ता का आभार स्वीकार करते हुए विश्वविद्यालय की उपलब्धियों का परिचय दिया तथा डा० मूर्ति के आगमन को शुभलक्षण माना। व्याख्यान से पूर्व कुलसचिव सहित विश्वविद्यालय के वरिष्ठ शिक्षकों ने डा० मूर्ति का माल्यार्पण द्वारा स्वागत किया।

पद्मश्री डा0 सच्चिदानंद राउतराय को ज्ञानपीठ सम्मान मिला

आधुनिक उड़िया कविता की गंगा को परम्परावादी और नवोत्थानवादी शिखरों से उतार कर वस्तुपरक अभिव्यंजना, मुक्त छंद और बिम्बों की धरती पर नई-नई शैलियों में प्रतिष्ठित करने का कार्य डा० सच्चिदानंद राउतराय ने किया। कथासाहित्य, काव्यनाटक, आलोचना और अनुसंधान के क्षेत्र में उनका योगदान अपूर्व है। वामपंथी विचारधारा के कारण भारतीय भाषाओं के प्रगतिशील साहित्यकारों में उनका विशेष स्थान है।

डा० राउतराय का जन्म १९१६ में पुरी जिलान्तर्गत खोर्धा निकटवर्ती गुरुजंग ग्राम में हुआ। बारह वर्ष की अवस्था में उनकी पहली कविता छपी और सोलह वर्ष की अवस्था में उनका प्रथम कवितासंग्रह 'पाथेय' प्रकाशित हुआ। उनकी दूसरी रचना 'पाण्डुलिपि' ने उड़िया कविता को नवीन दिशा दी। इस संग्रह की भूमिका तथा 'कविता १९६२' की भूमिकाओं से डा० राय के काव्यशास्त्रीय विवेचन का पता चलता है। 'साहित्य विचार', 'साहित्य मूल्यबोध' तथा 'आधुनिक साहित्यर केतक दिग' उनके अन्य आलोचनात्मक ग्रंथ हैं। उनके उपन्यास मनोविश्लेषण प्रधान है। फ्रायड और युंग के मन्तव्यों में बुना हुआ उनका कथासाहित्य, उड़िया कथासाहित्य में एक नई मानसिकता लेकर आया। 'चित्रग्रीव' उपन्यास इसी मनोभूमि की रचना है। यही प्रवृत्ति उनके काव्य 'अभियान' और 'पल्ली श्री' में भी दिखाई पड़ती है। क्षयग्रस्त समाज की विषमता और संवेदना, मानवीय आक्रोश और मानवीय न्यायपूर्ण अधिकारों की सचेतना डा० राय की रचनाओं के मूलस्वर हैं। ग्रामीण जन-जीवन और उखड़े परिवेश को अपनी कहानियों में जीवंत रूप देकर डा० राय ने उत्पीडित सर्वहारा के अधिकारों की रक्षा का प्रश्न उठाया है। आधुनिक आलोचक डा० राय को शुद्ध कविता का हिमायती मानते हैं। पद्मश्री से विभूषित, उत्कृष्ट प्रतिभा के धनी डा० राउतराय इस वर्ष ज्ञानपीठ से सम्मानित हुए। हार्दिक बधाई।

डा० सत्यकेतु विद्यालंकार और डा० लक्ष्मीनारायण दुबे को आचार्य गोवर्धन शास्त्री पुरस्कार।

गुरुकुल कांगड़ी के प्रारंभिक युग के आचार्य श्री गोवर्धन शास्त्री की स्मृति में संघड़ विद्या सभा ट्रस्ट जयपुर प्रतिवर्ष प्रशस्तिपत्र, उत्तरीय तथा एक सहस्र रुपये की सम्मान-राशि प्रदान कर, आर्य विचारधारा के विद्वानों का सम्मान करती है। इस वर्ष गुरुकुल के दीक्षान्त पर सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डा० सत्यकेतु विद्यालंकार तथा सागर विश्वविद्यालय के हिन्दी रीडर डा० लक्ष्मीनारायण दुबे को यह सम्मान परिद्रष्टा श्री सोमनाथ जी मरवाह के करकमलों द्वारा समर्पित किया गया। कुलपति श्री रामचन्द्र शर्मा ने प्रशस्तिपत्र देकर दोनों मनीषियों के कृतित्व का परिचय विद्वानों को दिया। स्मरण रहे, डा० सत्यकेतु जी ने कई खण्डों मे आर्यसमाज का बृहत् इतिहास लिखकर तथा डा० दुबे ने 'हिन्दी साहित्य मे आर्यसमाज की अभिव्यक्ति' लिखकर आर्यसमाज और साहित्य की अविस्मरणीय सेवा की है। इस अवसर पर आचार्य गोवर्धन शास्त्री के पुत्र श्री बलभद्रकुमार हूजा, पूर्व कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय विशेषरूप से उपस्थित थे।

पण्डित भगवद्दत्त वेदालंकार का निधन

गुरुकुल के यशस्वी स्नातक तथा वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् पण्डित भगवद्दत्त वेदालंकार का निधन अपूरणीय क्षति है। पण्डित जी ने १६३५ मे वेदालंकार की उपाधि प्राप्त की थी। पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा मे ६-७ वर्ष कार्य करने के बाद आप गुरुकुल के वेदानुसंधान विभाग मे स्थानान्तरित हुए। १६७६ तक वेदाध्यापन, अनुसंधान तथा गुरुकुल पत्रिका का सम्पादन करते हुए सेवामुक्त हुए तथा बाद मे विशेष योजना के तहत 'शास्त्र चूडामणि' के लिए पुन विश्वविद्यालय मे कार्यरत हुए। आपकी पुस्तकों मे वैदिक साहित्य की जटिल एवं दुरूह कल्पनाओं को सुगम और सुबोध रूप मे प्रस्तुत किया गया है। वेद की निष्काम सेवा मे आपने अभावग्रस्त होते हुए भी धनोपार्जन को महत्व नही दिया। 'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्म षडंगोवेदोऽध्येयोज्ञेयश्च'—इस शास्त्रवचन को आपने बड़ी सच्चाई के साथ जीवन मे उतारा।

संघड़ विद्या सभा ट्रस्ट जयपुर के सम्मान के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश शासन तथा पुरुषोत्तमदास मेमोरियल ट्रस्ट हैदराबाद से भी आपको सम्मान मिला। आपके पुरस्कृत ग्रंथो मे वैदिकस्वप्न विज्ञानम्, ऋषि रहस्य, विष्णु देवता तथा सविता देवता के नाम विशेष

रूप से उल्लेखनीय हैं। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर तथा डा० सम्पूर्णानन्द जी आपके ग्रंथो को बडे आदर के साथ देखते थे। इसके अतिरिक्त वेद-विमर्श, वैदिक अध्यात्म विद्या, बृहस्पति देवता, ऋभु देवता, ऋषिदेव निर्वचन तथा रुद्र देवता ग्रंथो ने भी विद्वानो का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया।

एक वेदविद्याविशारद् पण्डित के रूप मे ख्यातिप्राप्त, वैदिक विषयो के वैज्ञानिक भाष्यकार और गुरुकुलीय परम्परा के सच्चे आदर्श का अपने बीच से उठ जाना नियति का क्रूर उपहास ही है। पण्डित जी शुभ-सकल्पो के वसोर्धारा होम से अपने शिवतनू का प्रीणन करते रहे और अब अग्निहुत होकर वह तेजरूप हो गए है। पण्डित जी का कर्तृत्व अमर है। हम पण्डित जी को नतशिर श्रद्धाजलि अर्पित करते है।

हिन्दी अध्ययन शिविर

६ मार्च ८८ को अहिन्दीभाषी क्षेत्रो के हिन्दी अध्येता छात्र-छात्राओ का एक अध्ययनदल केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय भारत सरकार के शोधसहायक श्री अश्विनीकुमार के साथ गुरुकुल पधारा। इसमे आसाम, उडीसा, इम्फाल, अरुणाचल, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक तथा तमिलनाडु के प्रतिनिधि प्रमुख थे। हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० राकेश ने इन विद्यार्थियो की हिन्दीअध्ययन सम्बन्धी समस्याओ का समाधान किया। इस दल ने तीन दिन परिसर मे रहकर विश्वविद्यालय की गतिविधियो का अवलोकन किया। इस दल को लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी आचार्य एव विभागाध्यक्ष डा० सूर्यप्रसाद दीक्षित तथा आचार्य प्रो० रामप्रसाद वेदालकार ने सम्बोधित किया। डा० दीक्षित ने हिन्दी विभाग के निमत्रण पर 'भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता' विषय पर विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान दिया।

पद्मभूषण पण्डित अमृतलाल नागर को शिखर सम्मान

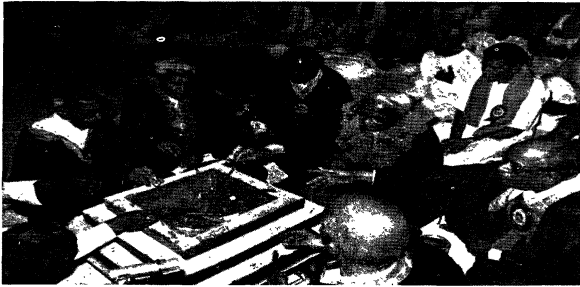
हिन्दी के कालजयी उपन्यासकार पद्मभूषण पण्डित अमृतलाल नागर को बिहार सरकार ने अपना सर्वोच्च साहित्यिक पुरस्कार 'डा० राजेन्द्रप्रसाद शिखर सम्मान' पटना मे प्रदान किया। मुख्यमन्त्री श्री भगवत झा आजाद ने उत्तरीय तथा एक लाख रुपये की राशि प्रशस्तिपत्र सहित श्री नागर को आदरपूर्वक समर्पित की। उत्तर प्रदेश सरकार ने भी श्री नागर को 'भारत-भारती' पुरस्कार देने की घोषणा की है। एक लाख रुपये की राशि का यह पुरस्कार प्रदेश का सर्वोच्च पुरस्कार है जो श्री नागर से पूर्व श्रीमती महादेवी वर्मा तथा श्री जैनेन्द्रकुमार को समर्पित किया जा चुका है। श्री नागर को इस अवसर पर हार्दिक बधाई।

श्री नागर का जन्म १७ अगस्त १६१६ को आगरा में हुआ था। गुजराती ब्राह्मण होने के कारण श्री नागर मे आस्था, कला, सास्कृतिक मूल्यो का सरक्षण और उदारता कूट-कूट कर भरी हुई है। खद्दर के श्वेत परिधान मे एक तेजस्वी किन्तु अत्यन्त शालीन और सरल व्यक्तित्व का नाम है नागर। ऐसा व्यक्तित्व जिसमे ढाई आखर प्रेम की सुगध है, विवेक पर आधारित धर्म की मुस्कान है तथा तडक-भडक और रूढियो से दूर साहित्यिक उदारता है। मुक्तमना नागर जी पुरातत्व और लोककलाओ मे पारगत हैं। संगीत और रगमच से उनका गहरा लगाव है। नाटक, सगीत, पत्रकारिता, फिल्मीलेखन तथा कथालेखन उनके साहित्यिक व्यक्तित्व मे घुलमिल गए है। स्वतन्त्रता से पूर्व 'सुनीति', 'चकल्लस' तथा 'अल्लाह दे' जैसी पत्रिकाओ का सुरुचिपूर्ण सम्पादन किया। 'चकल्लस' हास्यव्यग्य की साप्ताहिक पत्रिका थी, जिसकी प्रशसा करते हुए आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने कहा था – इसे देखकर मेरा मुर्दा दिल भी जिन्दा-सा हो उठा। प्रेमचन्द, सुदर्शन तथा भगवतीचरण वर्मा के समान श्री नागर फिल्म सिनेरियो लेखक के रूप मे बम्बई गए। १६४० से ४ तक कोल्हापुर, बम्बई तथा मद्रास के फिल्मक्षेत्रो मे काम किया। तदुपरान्त हिन्दी उपन्यासो के लेखन मे प्रवृत्त हुए। लखनऊ आकाशवाणी पर ड्रामा प्रोड्यूसर के पद पर कार्य किया। स्वाभिमानी होने के कारण स्वराज के काले साहबो की नौकरी छोडनी पडी। साहित्य अकादमी ने आपके उपन्यास 'अमृत और विष' को पुरस्कृत किया।

आपकी रचनाओ मे महाकाल, सेठ बाँकेमल, बूँद और समुद्र, अमृत और विष, सुहाग के नूपुर, शतरज के मोहरे, सात घूँघट वाला मुखडा, एकदा नैमिषारण्ये, मानस का हॅस, खजन नैन, नाच्यो बहुत गुपाल, ये कोठेवालियाँ, गदर के फूल प्रसिद्ध है। युगावतार और बात की बात आपकी नाट्यरचनाएँ है। कहानी सकलनो मे नवाबी मसनद, तुलाराम शास्त्री, पीपल की परी, मेरी प्रिय कहानियाँ तथा पाँचवा दस्ता और सात अन्य प्रसिद्ध है। सस्मरण, निबध और बालसाहित्य भी प्रचुर मात्रा मे लिखे है। बूँद और समुद्र मे नगर के समग्र जीवन के फलक पर बनते-बिगडते सम्बन्धो और मानवीय सवेदनाओ के विपुल बहुरगी चित्र अकित किए गए है। व्यष्टि और समष्टि के सम्बन्धो के प्रतीकार्थ पर आधारित यह उपन्यास हिन्दी आलोचको की दृष्टि मे नागर जी की कालजयी रचना है। डा० रामविलास शर्मा ने इस उपन्यास के ताई चरित्र को भारतीय नारी का ऐसा सहज सस्कार माना है जिसके चित्रण से हिन्दी उपन्यास को उच्चतम स्तर प्राप्त हुआ है। ऐतिहासिक चेतना के प्रत्यकन और सास्कृतिक विश्लेषण की सूझ-बूझ 'एकदा नैमिषारण्ये' मे मिलती है। लेखक ने नैमिषारण्य को भारतीय सास्कृतिक मूल्यो का सवाहक केन्द्र माना है। नैमिष आन्दोलन को वह वेद, पुनर्जन्म, कर्मकाण्ड, उपासना, ज्ञान तथा मानवीय सवेदना का अन्तिम रूप से समन्वयकर्ता मानते है। विरोधी सस्कृतियो का एकतासूत्र नैमिषारण्य की पुराण सस्कृति मे उपलब्ध है और यह काम मुख्यत एक विराट् राष्ट्रीयदृष्टि से किया गया था। भारतीय समाज का एक लम्बा इतिहास

नागर जी की रचनाओ मे निहित है। चाहे उनके उपन्यास हो या कहानियाँ, नाटक हो या प्रहसन, रेखाचित्र हो या सस्मरण—उनका साहित्य यथार्थ जीवन का साहित्य है, भोगे हुए त्रासद और मधुर, सघर्षरत और सघर्षोन्मुख जीवनक्षणो का साहित्य है, पर आस्था और विश्वास की एक ऐसी अखण्ड पूँजी भी उनके पात्रो के पास है जो विषमता के विष मे जिजीविषा का अमृत पिलाते रहते है और मानवीयशक्ति को जीवित रखते है, टूटने नही देते। भारतीय सामाजिक-सास्कृतिक दृष्टि से सम्पन्न, साम्यवादी चेतना से सम्युक्त, मनोवैज्ञानिक पकड तथा शिल्प और भाषागत प्रयोगो से सवलित श्री नागर की कथाकला राष्ट्रीय जागरण और प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास साहित्य मे शीर्षस्थ स्थान रखती है। नवयुग के परिप्रेक्ष्य मे एक स्वस्थ समन्वित दृष्टिकोण का सम्प्रेषण ही उन्हे अभीष्ट है। श्री नागर की रचनाएँ देश और देश से बाहर लोकप्रिय हुई है। अनेक सम्मान, पुरस्कार और प्रशसाओ से चर्चित-अर्चित श्री नागर दीर्घजीवी हो और इसी प्रकार अनवरत साहित्यसाधना मे सलग्न रहे।

—विष्णुदत्त राकेश



दीक्षान्त-यज्ञ सम्पन्न करते हुए (बाएँ से) कुलाधिपति डा० सत्यकेतु, परिद्रष्टा श्री सोमनाथ मरवाह, कुलपति श्री शर्मा, मुख्य अतिथि श्री देशपाण्डे, कुलसचिव डा० वीरेन्द्र अरोड़ा तथा प्रो० रामप्रसाद आचार्य एवं उपकुलपति ।



दीक्षान्त-समारोह (१९८८) के अवसर पर उपाधि प्राप्त्यर्थं स्नातको की शोभा-यात्रा का दृश्य ।

वाल्मीकि रामायण का अङ्गी-रस

—डा० महावीर, एम ए (संस्कृत, हिन्दी), पी-एच डी.
प्राध्यापक, गुरुकुल कागड़ी वि०वि०, हरिद्वार

आदिकवि महर्षि वाल्मीकिकृत रामायण विश्वसाहित्य का अक्षय कोश है, काव्य-गुणो का आकर है, भारतीय संस्कृति का उज्ज्वल दीपक है। इस रामायण–महासागर से अनेकानेक कवियो की कल्पनाओ के मेघ बनकर उठे और साहित्य-गगन मे छा गये।

लौकिक काव्य मे रस की प्रथम उद्भूति रामायण मे ही हुई थी, वह रस जो काव्य का जीवन है, उसकी आत्मा है। प्रसिद्ध काव्यशास्त्रियो के अनुसार साहित्य मे रस की सर्वप्रथम उद्भावना करने का श्रेय आदिकवि को ही प्राप्त है।

किसी भी काव्य का मूल्याङ्कन करते समय रस-योजना की दृष्टि से आलोच्य कृति की समीक्षा अत्यावश्यक एव महत्त्वपूर्ण होती है। फिर वाल्मीकि-रामायण मे तो रसो की मन्दाकिनी प्रारम्भ से अन्त तक प्रवहमान है। सभी रसो की मञ्जुल योजना मे महर्षि पूर्णरूपेण सफल हुए है।

संस्कृत काव्यशास्त्रियो ने प्रत्येक महाकाव्य अथवा नाटक मे शृङ्गार अथवा वीर रस को अङ्गी रूप मे एव अन्य रसो को अङ्ग रूप मे प्रयुक्त करने का निर्देश दिया है 'शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस उच्यते' सा०द० ६।३१७। इस मान्यता के अनुसार शृङ्गार, वीर अथवा शान्त-रस प्रधान महाकाव्य का निर्माण होना चाहिए। किन्तु कवीश्वरो की भारती केवल इस सीमा मे बँधकर न रह सकी। कुछ कवियो ने शृङ्गार अथवा वीर के रसराजत्व को चुनौती देते हुए करुण-रस-प्रधान काव्यो की रचना की। पदवाक्यप्रमाणज्ञ महाकवि भवभूति का करुणरसप्रधान नाटक 'उत्तररामचरित' इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

आदिकवि की अमर कृति के अङ्गी-रस का निर्धारण करते समय सर्वप्रथम काव्यशास्त्रीय प्रतिबद्धताओ की शृङ्खला को शिथिल करना आवश्यक होगा, क्योकि यह उस काल की प्रथम रचना है, जिस काल तक काव्यशास्त्रियो द्वारा काव्य-तत्वो

का निर्धारण नही किया गया था। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वाल्मीकि केवल लौकिक कविमात्र नही हैं, अपितु वे साक्षात्कृतधर्मा महर्षि हैं, जो समग्र उत्तमोत्तम काव्यगुणों से परिपूर्ण अमर महाकाव्य का निर्माण करते हुए भी लोककल्याण की, वैदिक संस्कृति के उद्घोष की दिव्य भावना सदैव अपने समक्ष रखकर कविकर्म मे प्रवृत्त होते हैं।

महाकवि कालिदास जैसे कवियों के काव्यो को पढकर सहसा ही उन्हे शृंगार रस का कवि घोषित कर दिया जाता है, क्योकि अन्य रसो की तुलना मे शृंगार का बाहुल्य एव वैविध्य, शृंगार के अङ्गीत्व को प्रमाणित कर देता है, किन्तु वाल्मीकि-रामायण की स्थिति इससे भिन्न है। इस महाकाव्य मे शृंगार, वीर, करुण, आदि विविध रसो का प्रयोग उत्कृष्ट रूप मे और वह भी प्रचुर मात्रा मे हुआ है, अत. जो जिस रस के प्राधान्य का पक्षधर है, उस समीक्षक को उस रस की मुख्यता सिद्ध करने का आधार प्राप्त हो जाता है। किन्तु आचार्यों के अनुसार कोई एक रस अङ्गी एव अन्य अङ्गभूत होते हैं, अत. अन्त साक्ष्यो एव बहिसाक्ष्यो के आधार पर अङ्गीरस के निर्धारण का प्रयास करेगे।

ध्वनि सप्रदाय के प्रवर्त्तक आचार्य आनन्दवर्धन ने कहा है कि जिन प्रबन्धो मे बहुत से रस एकत्रित होकर प्रतिभासित होते हैं, उन रसो मे जिस रस का आस्वाद सर्वाधिक प्रतीत होता है, वह रस स्थायीवत् एव अन्य सचारी के समान होते है—'बहूना समवेताना रूप यस्य भवेद् बहु। स मन्तव्यो रसः स्थायी शेषा सचारिणो मता.'॥ ध्वन्यालोक पृ० ३६७।

वाल्मीकि-रामायण के अङ्गी-रस के विषय मे विद्वानो मे मतभेद रहा है। राम-कथा साहित्य के विद्वान् अध्येता डा० रामप्रकाश अग्रवाल इसे वीर-रस प्रधान महाकाव्य मानते हैं। अपने मत की पुष्टि मे उनके तर्क निम्न प्रकार है—

१ उत्तरकाण्ड प्रक्षिप्त है, अत: उत्तरकाण्ड की घटनाओ के आधार पर करुण-रस की प्रधानता नही मानी जा सकती।

२. क्रौच वध का प्रसंग भी संदिग्ध है और केवल उसके आधार पर करुण रस को प्रधान नही माना जा सकता।

३. राम एवं अधिकाश पात्रो के वीर चरित्र एव रावणवध की घटना के आधार पर इसका प्रधान रस वीर ही है।

४. बालकाण्ड मे यह उल्लेख किया गया है कि प्रारम्भ मे इस महाकाव्य का नाम 'पौलस्त्य वध' रखा गया था। इस आधार पर भी रामायण का प्रधान रस वीर को ही मानना चाहिए।

५. भारतीय महाकाव्यो का विशेष अध्ययन करने वाले विद्वानो ने युग और वातावरण के आधार पर रामायण और महाभारत को वीर-युग का प्रतिनिधि महाकाव्य माना है ।

६. रामायण मे ऐतिहासिक तत्वो की प्रचुरता भी यही प्रकट करती है कि उसमे वीर-रस की प्रधानता है[1] ।

जो अन्य विद्वान् इसे वीर-रस-प्रधान महाकाव्य मानते है उनके तर्क भी उपयुक्त ही हैं ।

कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर ने रामायण मे शान्त-रस को प्रधान रस माना है। वे कहते है—

"रामायण मे बाहुबल को नही, जिगीषा को नही, राष्ट्रगौरव को नही, केवल शान्त रसास्पद गृहस्थ धर्म को ही करुणा के अश्रुजल से अभिषिक्त कर महान् शौर्य, वीर्य के ऊपर प्रतिष्ठित किया गया है[2] ।"

टैगोर ने काव्यशास्त्रीय दृष्टि से निरूपित शान्त रस को प्रधान नही माना है, अपितु समग्र महाकाव्य के अध्ययन से जो जीवनोपयोगी नैतिक शान्ति प्राप्त होती है, उसकी ओर सकेत किया है ।

कतिपय विद्वान् रामायण का अङ्गी-रस भक्तिरस को मानते है। इस विषय मे के० आर० शास्त्री के विचार इस प्रकार है—

"We are in the Ramayana in a region where the Karun-Rasa regions supreme and is finally transconded and etherialized into Shanta-Rasa and Bhakti-Rasa.[3]"

कुछ समीक्षक शृंगार को भी प्रधान रस कह सकते है किन्तु विशद् विवेचना के उपरान्त वीर, शृगार, शान्त अथवा भक्तिरस को इस महाकाव्य मे अङ्गी रस नही माना जा सकता ।

शान्त अथवा भक्ति रस के पक्ष मे ऐसा कोई प्रबल आधार नही है, तथा स्वय वाल्मीकि ने कही ऐसा सकेत नहीं किया है। हाँ इस महाकाव्य मे यत्र-तत्र शान्त-रस

---

१. डा० रामप्रकाश अग्रवाल, बाल्मीकि और तुलसी—साहित्यिक मूल्यांकन पृ० ३९८-९९

२. प्राचीन साहित्य (हिन्दी अनुवाद) पृ० ७

३. स्टडीज् इन रामायण—पृ० १२५

की रमणीयता दृष्टिगोचर होती है तथा भक्ति-भावना भी परिलक्षित होती है।

रसराज शृंगार भी इस महाकाव्य का अङ्गी-रस नही हो सकता, क्योकि यह किसी विलासी कवि की रचना नही है अपितु शान्तात्मा महर्षि की वाणी से करुणा-निधान राम के पावन-चरित का सहज उच्छलन है, इसलिए इसमें शृंगार की प्रधानता कहाँ ?

इसमे वीर-रस के प्राधान्य को भी अङ्गीकार नही किया जा सकता, क्योंकि—

१. रामायण का उत्तर-काण्ड प्रक्षिप्त है। यह अद्यावधि विवादास्पद है, अतः इस काण्ड को प्रक्षिप्त मानकर करुण-रस की प्रधानता को नकार कर, वीर रस को प्रधान नही कहा जा सकता।

२. क्रौञ्च-वध का प्रसग सदिग्ध नही है क्योकि आनन्दवर्धनादि आचार्यों तथा कालिदासादि महाकवियो ने इसे प्रामाणिक माना है।

३ राम एवं अन्य पात्रो के वीरतापूर्ण कार्यों के आधार पर भी इसे वीर-रस प्रधान नही कह सकते, क्योकि इनकी वीरता करुणा के क्रोड से उद्‌बुद्ध है।

४. ऐतिहासिक तत्त्वो का प्राचुर्य भी वीर-रस के अङ्गीत्व को सुनिश्चित करने वाला सबल आधार नही हो सकता।

५ विरही राम के हृदय मे समय-समय पर युद्ध का उत्साह तरंगित होता है, यह सत्य है किन्तु इस उत्साह के मूल मे करुणा ही है।

अधिकांश सुधी समीक्षको, आचार्यों एव महाकवियो ने इस महाकाव्य का अङ्गी-रस करुण को स्वीकार किया है। स्वयं आदिकवि ने अपने महाकाव्य का प्रेरणास्रोत करुणा को माना है। तमसा तट पर विचरण करते हुए महर्षि ने व्याध द्वारा कामासक्त क्रौंच-युगल मे से नर-पक्षी का निर्मम वध होते हुए देखा तो उनके शोकाकुल हृदय से ही मानो यह श्लोक फूट पड़ा था —

'मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्[1] ॥

महर्षि ने स्वयं अपने शिष्यो से कहा था—

'पादबद्धोऽक्षरसमस्तन्त्रीलयसमन्वित ।
शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा[2] ॥

१. वा० रा० बालकाण्ड, २।१५

२. वा० रा० बालकाण्ड, २।१८

और वस्तुतः महर्षि के अन्तःकरण का यह शोक ही श्लोकरूप हो गया—'शोकः श्लोकत्वमागत.'[1]।

आचार्य आनन्दवर्धन ने रामायण मे करुण रस की प्रधानता स्पष्ट रूप से स्वीकार की है। ध्वनितत्त्व की विवेचना करते हुए वे इसकी पुष्टि इस प्रकार करते है—

'काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवे पुरा।
क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थ. शोकः श्लोकत्वमागत.[2] ॥

इस श्लोक की व्याख्या करते हुए वे लिखते हैं—

"तथा चादिकवेर्वाल्मीकेर्निहतसहचरविरहकातरक्रौञ्च्याक्रन्दजनित· शोक एव श्लोकतया परिणत.[3]।

दशरूपक मे करुण रस की सुखात्मकता प्रतिपादित करते हुए धनिक ने अपनी टीका मे रामायण को करुण-रस प्रधान महाकाव्य माना है—

'यदि च लौकिक करुणवद् दुःखात्मकत्वमेवेह स्यात्तदा न कश्चिदत्र प्रवर्तेत, ततः करुणैकरसाना रामायणादि महाप्रबन्धानामुच्छेद एव भवेत्"[4]।

विश्वनाथ ने भी करुणादि रसो की सुखात्मकता निरूपित करते हुए रामायण का अङ्गी रस करुण ही माना है। उनका मत है कि यदि करुणादि को दु खात्मक मान ले तब रामायणादि महान् काव्य अथवा नाट्यग्रन्थो को दुःखदायी मानना पडेगा। रामायणादि काव्य-प्रबन्ध अथवा नाट्य-प्रबन्ध सबके लिए रसात्मक-आनन्द निष्यन्दी प्रबन्ध है। इन प्रबन्धों का जो रस है, वह करुण है। अब यदि करुण को दु खात्मक मान लिया जाये, तब तो यह भी मानना पडेगा कि करुणरसप्रधान रामायण आदि प्रबन्ध सहृदय सामाजिक के लिए दुःखात्मक प्रबन्ध हैं—

"करुणादावपि रसे जायते यत्परं सुखम्,
सचेतसामनुभव. प्रमाण तत्र केवलम्।
किञ्च तेषु यदा दु ख न कोऽपि स्यात् तदुन्मुख·,
तथा रामायणादीना भविता दु खहेतुता[5] ॥"

१. वा० रा० बालकाण्ड २।४०
२. ध्वन्यालोक १।१५
३. ध्वन्यालोक पृ० ३०
४. दशरूपक ४।४४-४५ पर धनिक की टीका।
५. साहित्य दर्पण ३।४-५

महाकवि कालिदास ने भी आदि-कवि के प्रेरक-स्रोत शोक को मानते हुए प्रकारान्तर से रामायण को करुण-रस प्रधान महाकाव्य माना है –

"निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थ श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोक[1]"

नाटककार भवभूति ने रामायण को आधार बनाकर करुण-रस प्रधान नाटक 'उत्तररामचरितम्' की रचना की है।

सपूर्ण रामायणी-कथा करुण के क्रोड मे ही क्रीडा करती हुई प्रतीत होती है। वीर, श्रृङ्गारादि अन्य रसो की धाराये भी अन्ततोगत्वा करुण मे ही विलीन होती हैं।

रामायण के पात्र एक ओर वीरता के प्रतीक है, तो दूसरी ओर उनके हृदय करुणा से ओत-प्रोत है। सभी के अन्त करण आँसुओ से गीले है। सभवत इस काव्य का कोई पात्र ऐसा नही है, जो किसी न किसी अवसर पर जी भरकर न रोया हो। रामायण मे सर्वत्र करुणा का साम्राज्य दृष्टिगोचर होता है। करुणा, कवि के हृदय की मूलभावना है, अत करुण-रस की योजना करते समय आदि-कवि भाव-सरिता मे डूब जाते है। ऐसे अवसरो पर कवि की भारती चेतनाचेतन जगत् को शोकमय बना देती है।

केवल युद्धकाण्ड के आधार पर इस महाकाव्य को वीर-रस का महाकाव्य नही कहा जा सकता। किसी एक अश के आधार पर सपूर्ण महाकाव्य के अङ्गी-रस का निर्धारण नही हो सकता। अपितु उस काव्य के समग्र कलेवर को दृष्टिपथ मे रखकर ही करना होगा, और सपूर्ण रामायण का अध्ययन करने पर जो रस सर्वाधिक हृदयस्पर्शी है, वह है करुण।

रामायण मे प्रारम्भ से अन्त तक स्थान-स्थान पर करुण रस की सुन्दर अभि-व्यञ्जना मे महाकवि को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

---

1. रघुवश १४।७०

वृक्षों में जीव और हिंसा : एक विवेचन

—डा० सत्यव्रत राजेश, प्राध्यापक
गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वृक्षों मे जीवविषयक मान्यता आर्य समाज के प्रारम्भिक विद्वानो मे भी विवाद का विषय रही है। कुछ विद्वान् वृक्षो मे जीव मानते थे, जिनमे प० गणपति शर्मा आदि विद्वान् मुख्य थे तथा कुछ विद्वान् वृक्षो मे जीव नही मानते थे, जिनमे स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। आजकल भी विद्वानो में इस विषय पर मतैक्य नही मिलता। वृक्षो मे जीव न मानने वालो का प्रबल तर्क यह है कि यदि वृक्ष-वनस्पति आदि मे जीव माना जाए तो एक व्यक्ति गाजर-मूली उखाडकर खाता है तथा दूसरा व्यक्ति गाय-बकरे आदि को मारकर खाता है तब दोनो मे अन्तर क्या रहा? हमारा भी वृक्ष से तात्पर्य वृक्ष-औषधि-वनस्पति-लता-वल्लरी आदि सब से ही है, केवल वृक्ष से ही नही।

यह प्रश्न बडी गरिमा रखता है तथा समाधान चाहता है। इस गहन गुत्थी को सुलझाए बिना हम भी कन्दादि उखाडकर खाने पर उसी कोटि मे आ जाते हैं जिस कोटि मे वधिक या व्याघ। इस गुत्थी के समाधान की ओर बढने से पूर्व हमे यह देखना है कि वृक्षो मे जीवविषय मे वेद, उपनिषद्, स्मृतिदर्शन आदि ग्रन्थ क्या मान्यता रखते है। सर्वप्रथम वेद को ही ले—

वेद की मान्यता—

वृक्षादि मे जीव की सत्ता के विषय मे अथर्ववेद कहता है—

इद जनासो विदथ महद् ब्रह्म वदिष्यति।
न तत् पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुध[1] ॥

अर्थात्, हे मनुष्यों! इस बात को तुम जानते हो कि वह पूजनीय ब्रह्मज्ञानी पर-ब्रह्म का कथन करेगा जो ब्रह्म न केवल पृथिवी अथवा द्युलोक मे ही है अपितु सर्वत्र है तथा जिसके नियमानुसार ये लता (आदि) प्राण लेते है।

इस मन्त्र के अन्त मे स्पष्ट कहा है कि जिससे ये लताएँ प्राण लेती है। प्राणन क्रिया का आधार आत्मा ही है। प्राय अन्दर से स्वत बढने वाली वस्तुएँ आत्मा

---

१ अथर्व० १।३२।१

की ही प्रतीति कराती हैं। औषधि, वनस्पति, वृक्ष, लता आदि सब अन्दर से बढ़ते हैं, अत. इनमे आत्मा को मानना ही होगा। आचार्य सायण ने भी इस मन्त्र मे 'प्राणन्ति' का अर्थ 'जीवन्ति' ही किया है। एक अन्य मन्त्र मे भी औषधि को जीवन देने वाली, हानि न पहुँचाने वाली तथा जीवित रहने वाली बतलाया है[1]। उस मन्त्र मे आए 'जीवन्तीम्' पद का अर्थ क्षेमकरणदास त्रिवेदी ने 'जीव रखने वाली' किया है।

उपर्युक्त दोनो मन्त्रो मे औषधि को प्राण लेने वाली तथा जीवित रहने वाली कहा है। प्राण तथा जीवन का सम्बन्ध आत्मा से ही है, जड़ प्रकृति मे तो जीवन तथा प्राणन क्रिया का प्रश्न ही नही उठता। पृथिवी, जल आदि न तो श्वास लेते है और न प्रश्वास छोड़ते हैं, किन्तु वृक्षादि श्वास के रूप मे कार्बन लेते तथा प्रश्वास के रूप में ओषजन छोड़ते हैं, यह सर्वविदित ही है। अतः वेद के अनुसार वृक्षादि मे आत्मा है।

उपनिषद् मान्यता

उपनिषद् भी वेद के इस सिद्धान्त की पुष्टि करती है। कठोपनिषद् मे यम 'मरने पर कोई तत्व शेष रहता है अथवा नहीं' नचिकेता के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते है कि –'हे नचिकेता ! मुझे प्रसन्नता है कि मैं तुझे इस शाश्वत गुप्तज्ञान को बताऊँगा कि मरकर आत्मा का क्या होता है ? अपने ज्ञान तथा कर्म के अनुसार कुछ आत्मा तो शरीर धारण करने के लिये (मनुष्यादि) योनि को प्राप्त होते हैं तथा कुछ जीव मानवादि से भिन्न स्थावर अर्थात् वृक्षादि की योनि को प्राप्त कर लेते है[2]। भाव यह है कि जीवो को ज्ञान तथा कर्म के आधार पर योनि मिलती है। वह योनि जगम=मनुष्य-पशु-पक्षी-सरी-सृप-कीट-पतग आदि भी हो सकती है तथा स्थावर=लता, वृक्ष, वनस्पति, कन्द-मूल आदि भी। इस उपनिषद् वाक्य से ब्रह्मकुमारियो की वह मान्यता भी खण्डित हो जाती है जिसके अनुसार वे मानव को कैसा भी कर्म करने पर मनुष्य की ही योनि मिलने की बात करते है।

छान्दोग्य उपनिषद् मे भी वृक्षादि मे आत्मा की सत्ता को स्वीकार किया गया है। आरुणि उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु को आत्मा के विषय मे बतलाते हुए कहते है कि –'हे प्रिय ! जो व्यक्ति इस महान् वृक्ष की जड मे चोट करे तो वह जीता हुआ रस गिराए, जो मध्यभाग मे चोट करे तो वह जीता हुआ रिसता रहे तथा जो अग्रभाग मे चोट करे तो भी वह जीता हुआ सुवित होता रहे, पर सूखे वा मरे नही, क्योकि यह वह वृक्ष जीवन तथा आत्मा से परिपूर्ण है। इसमे जीवन-प्राण भी है तथा आत्मा भी, इसी

---

१. जीवला नघारिषा जीवन्तीमौषधीमहम् ॥ अथर्व० ८।७।६

२. हन्त त इद प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम्।
यथा च मरण प्राप्य आत्मा भवति गौतम ॥
योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीर त्वाय देहिन:।
स्थाणुमन्येऽनु संयन्ति यथा कर्म यथा श्रुतम् ॥ कठउ० २।५।६–७

कारण यह पानी पीता हुआ हर्ष से रहता है। इस वृक्ष की एक शाखा को जब जीव छोड देता है तो वह सूख जाती है, दूसरी को छोड देता है तो वह सूख जाती है, तीसरी को छोड देता है तो वह सूख जाती है और यदि जीव समस्त वृक्ष को छोड देता है तो सारा वृक्ष सूख जाता है[1]। इससे अधिक वृक्षादि मे आत्मा की सत्ता का स्पष्ट उल्लेख क्या होगा ?

मनु की सम्मति

मनुस्मृति मे भी मनु महाराज वृक्षो मे आत्मा की सत्ता का प्रतिपादन करते है। कर्मानुसार जीवो को किस-किस प्रकार की योनियाँ प्राप्त होती हैं, उनका उल्लेख करते हुए वे कहते है—प्राणी कर्मानुसार किन-किन योनियो मे जन्म लेते हैं, वह सब मैं बताऊँगा। वहाँ जीव की उद्भिज योनि मे उन्होने बीज तथा गाठ ने उगने वाले सब स्थावर, पकने पर समाप्त हो जाने वाली औषधियाँ, बिना फूल के फल लगने वाली गूलर आदि वनस्पति, फूल-फल लगाकर झड जाने पर भी स्थिर रहने वाले वृक्ष, गुच्छे-गुल्मयुक्त लता-वल्लरी को गिनाया है[2]। अन्यत्र भी मनु ने स्थावर को जीव का शरीर मानते हुए लिखा है—'शरीर सम्बन्धी दोषयुक्त कर्मों से मनुष्य स्थावर की योनि पाता है[3]।

वेदान्तदर्शन की एतद्विषयक मान्यता

वेदान्तदर्शन के शाकरभाष्य मे भी जीवो का चावल, जौ, औषधि, वनस्पति, तिल तथा उडद के रूप मे जन्म लेने का उल्लेख है[4]। आगे अन्य जीवो से अधिष्ठित व्रीहि यवादि मे अनुशयी—अनुशय— कर्म वाले जीवो का सम्बन्ध बतलाया है[5]। इस सूत्र मे 'अन्याधिष्ठितेषु' पद स्पष्ट कर रहा है कि व्रीहि यवादि अन्य जीवो से अधिष्ठित होते है, अर्थात् अन्य जीव व्रीहि यव आदि के उसी प्रकार अधिष्ठाता=अभिमानी जीव है जैसे कि हम अपने शरीर के अधिष्ठाता है[6]।

---

१ अस्य सोम्य महतोवृक्षस्य यो मूलेऽभ्याहन्याज्जीवन् स्रवेद्योमध्ये हन्याज्जीवन् स्रवेद्योऽग्रे हन्याज्जीवन् स्रवेत्। स एष जीवेनात्मनानु प्रभूत पेपीयमानो मोदमानस्तिष्ठति। अस्य यदेका शाखा जीवोजहात्यथ सा शुष्यति, द्वितीया जहात्यथ सा शुष्यति, तृतीयाँ जहात्यथ सा शुष्यति, सर्व जहाति सर्व शुष्यति॥ छा०उ० ६।११ १ २

२ येषा तु यादृशंकर्म भूतानामिहकीर्तितम्। तत्तथा वोऽभिधास्यामि क्रमयोग च जन्मनि॥ उद्भिजा स्थावरा सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिण। औषधय फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगा॥ अपुष्पा फलवन्तो ये ते वनस्पतय स्मृता। पुष्पिण फलिनश्चैव वृक्षास्तूभया स्मृता॥ गुच्छगुल्म तु विविध तथैव तृणजातय। बीजकाण्डरुहाण्येव प्रताना वल्लय एव च॥ मनु० १।४२,४६-४८

३ शरीरजै कर्मदोषैर्याति स्थावरता नर॥ वही १२।९

४ त इह व्रीहियवा ओषधिवनस्पतयस्तिलमाषा इति जायन्ते॥ ब्रह्मसूत्रशाकरभाष्य ३।१।२८

५ अन्याधिष्ठितेषु पूर्ववदभिलापात्॥ वेदान्त द० ३।१।२८

६. द्र०—गणपति शर्मा, स्वामी दर्शनानन्द से वृक्षो मे जीवविषयक शास्त्रार्थ।

वृक्षों में जीवविषयक शंकराचार्य का मत

दार्शनिक शिरोमणि, अपनी प्रतिभा से बौद्धो को परास्त कर वैदिकमत संस्थापक तथा परिस्थितिवश जीवब्रह्म की एकता के प्रतिपादक शकराचार्य ने भी वृक्षो मे जीव को माना है। वे लिखते हैं—वृक्षो के रस स्रवण आदि चिन्हों से उनका जीववाला होना सिद्ध है। दृष्टान्त तथा श्रुति मे भी स्थावर चेतन है। बौद्ध तथा कणाद के अनुयायी जो स्थावरो को अचेतन मानते है उनकी मान्यता साररहित है[1]।

हमारा यहाँ जीवो की वृक्षो मे विद्यमानता दिखाना ही प्रयोजन है, जिससे शकराचार्य भी सहमत हैं, शेष मान्यता पर आगे विचार करेंगे।

वृक्षादि में जीव और महर्षि दयानन्द

महर्षि दयानन्द वेदो के परम विद्वान् तथा योगी हुए हैं। उनकी मान्यताएँ वेदो पर आधारित हैं। वे भी वृक्षादि मे जीव को मानते है। सत्यार्थ प्रकाश के अष्टम समुल्लास मे उनके द्वारा किये गए प्रश्न से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे वृक्षादि मे जीव की सत्ता स्वीकार करते हैं। प्रश्न यह है — "ईश्वर ने किन्ही जीवों को मनुष्यजन्म, किन्ही को सिंह आदि क्रूर जन्म, किन्ही को हरिण गाय आदि पशु, किन्ही को वृक्षादि कृमि कीट पतग आदि जन्म दिये है यहाँ उन्होने वृक्ष आदि को जीव का शरीर बतलाया है। आगे नवम समुल्लास मे मनु के एक श्लोक[2] को उद्धृत करके उसका अर्थ करते हुए लिखा है—'जो नर शरीर से चोरी, परस्त्रीगमन, श्रेष्ठो को मारने आदि दुष्ट कर्म करता है, उसको वृक्षादि स्थावर का जन्म मिलता है[3]।

वृक्षों में जीव और हिंसा : एक उलझा प्रश्न

वेद से लेकर महर्षि दयानन्द तक के ग्रन्थो से यह सिद्ध हो जाने पर कि 'वृक्षादि मे जीव है', यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जब वृक्षादि मे जीव है तब इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख तथा दुःख आत्मा के लक्षण[4] होने से उनके उखाडने-काटने आदि से उनको दुःख होने से हिंसा-दोष भी हमे लगना चाहिए। अन्यथा गाय, भैंस, भेड, बकरी, मुर्गी, मछली, टिड्डी आदि के मारने आदि मे भी पाप न लगना चाहिए, क्योंकि जब जीवयुक्त पशु-पक्षी आदि के मारने आदि मे पाप माना जाता है तब जीवयुक्त गाजर-मूली आदि के उखाडने-काटने आदि मे भी हिंसा का दोष लगना चाहिए। आप स्वयं गाजर-मूली आदि खाते है तथा हमारे पशु-पक्षी आदि मारने मे पाप बतलाते हो, यह दुहरी नीति कैसी ? यदि

---

१ वृक्षस्य रसस्रवणादि लिङ्गा ज्जीवतत्व दृष्टान्त श्रुतेश्च चेतनावन्त. स्थावरा इति, बौद्धंकाणादमतमचेतना स्थावरा इत्येतदसारमिति दर्शितभवति ॥ छा. उ ६।११।१-२

२. मनु० १२।६

३. स०प्र० समु० ६

४. इच्छाद्वेष प्रयत्न सुखदुःख ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम् ॥ न्याय द० १।१।१०

यह पापकर्म है तो दोनों पापी हैं और यदि आपको गाजर आदि के उखाड़ने-काटने मे पाप नही है तो हमें भी बकरी आदि के मारने मे दोष क्यों ?

पाप-पुण्य का सम्बन्ध

यह उभरा प्रश्न हमे गम्भीरतापूर्वक सोचने पर विवश करता है। इसका समाधान हुए बिना हम भी बकरी मारने वालो की भाँति हिंसा-दोष से नही बच सकते। सर्वप्रथम हमे यह विवेचन करना होगा कि पाप-पुण्य का सम्बन्ध है किससे ? क्योकि आत्मा तो अमर है। उसके मरने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। पुन: आत्मा के न मरने पर भी पाप लगने अथवा न लगने का कारण क्या है ? इस विषय मे न्यायदर्शन मे विचार किया गया है। वहाँ आत्मा को शरीर आदि से पृथक् बताते हुए इस विषय मे यह तर्क दिया है कि—"मृत शरीर के जलाने पर पाप नही लगता तथा जीवित शरीर के जलाने पर पाप लगता है। यह इस बात का प्रमाण है कि आत्मा शरीर से पृथक् है। उसे ही सुख-दु:ख की अनुभूति होती है। चूँकि अब वह शरीर मे नही रहा, अत मृत शरीर को जलाने मे भी पाप नही लगता[1]।" आगे प्रतिपक्षी की ओर से तर्क देते है कि जब आप आत्मा को नित्य मानते हो और यह मान्यता रखते हो कि आत्मा कभी मरती नहीं; तब जीवित व्यक्ति के शरीर को जला देने पर भी पाप नही लगना चाहिए, क्योकि आत्मा तो मरी ही नही, फिर पाप-पुण्य कैसा ?[2] इस प्रश्न का जो उत्तर दर्शनकार ने दिया है वह हमारे विषय से सीधा सम्बन्ध रखता है, जो इस प्रकार है 'हम नित्य-आत्मा के वध को हिंसा नहीं कह रहे अपितु जीवित व्यक्ति के जलने पर उसके शरीर मे जो उपघातपीडा-विकलता, बेचैनी, तड़पन होती है, वह हिंसा है। जो जीवित व्यक्ति के जलाने पर तो होती है किन्तु मृतक के जलाने पर नही होती। अत जीवित को जलाना पाप है, मृतक को जलाना नही[3]।

इससे स्पष्ट है कि इन्द्रियो तथा शरीर को दी जाने वाली पीडा ही पाप का कारण है, चाहे वह अज्ञानवश हो या स्वार्थवश। यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि किसी के रोगनिवारण के प्रयत्न मे रोगी के मरने पर अथवा अपराधी को यथापराधदण्ड देने मे की जाने वाली हिंसा, हिंसा नही मानी जाती। क्योकि समाजतन्त्र को सुव्यवस्थितरूप से चलाने के लिये तथा अपराध की प्रवृत्ति रोकने के लिए की गई दण्डव्यवस्था न्यायाधीश को दोषी नहीं बनाती। यही व्यवस्था शत्रु को युद्ध मे मारने पर भी लागू होती है। अत पाप का कारण स्वार्थ या अज्ञानवश किसी को पहुँचाई जाने वाली पीडा है।

---

१. शरीरदाहे पातकाभावात् ॥ न्याय द० ३।१।४
२. तदभाव सात्मक प्रदाहेऽपि तन्नित्यत्वात् ॥ वही, ३।१।५
३. न, कार्याश्रयकर्तृवधात् ॥ वही, ३।१।६

वृक्षों तथा पशु आदि में रचनाभेद

अब विवेचनीय प्रश्न यह है कि वृक्षादि मे स्थित अभिमानी जीवो को पीड़ा का अनुभव होता है अथवा नही ? यदि उनको पीड़ा होती है तो उनके उखाड़ने-काटने पर हम पाप से नही बच सकेंगे। वस्तुत. पशु आदि तथा वृक्षादि में स्थिति भिन्न है। क्योंकि गाय आदि को पीडा होना तो प्रत्यक्ष है, उसमे तो किसी को संशय ही नही। उन्हे तो हमारी ही भाँति सुख-दुःख की अनुभूति होती है। किन्तु वृक्षादि स्थावरो की स्थिति इससे भिन्न है, उन्हे हमारी भाँति सुख-दुःख का अनुभव नही होता। इस विषय मे महर्षि दयानन्द के विचार बहुत स्पष्ट तथा मार्गदर्शक है। सत्यार्थ प्रकाश के द्वादश समुल्लास मे जैनियो के वायुकाय जीवो की हिंसा बचाने के लिये उनके द्वारा मुख पर पट्टी बाँधने की समीक्षा करते हुए वे लिखते हैं— 'देखो, पीडा उसी जीव को पहुँचती है जिसकी वृत्ति सब अवयवो के साथ विद्यमान हो।' इसमे प्रमाण —

पञ्चावयवयोगात् सुखसंवित्ति ॥[1] यह साख्यशास्त्र का सूत्र है।

जब पांचो ज्ञानेन्द्रियो का पाँचो विषयो के साथ सम्बन्ध होता है, तभी सुख वा दुःख की प्राप्ति जीव को होती है। जैसे बधिर को गाली प्रदान, अन्धे को रूप वा आगे से सर्प व्याघ्रादि भयदायक जीवो का चला जाना, शून्यबहिरी वाले को स्पर्श, पिन्नस रोग वाले को गन्ध और शून्य जिह्वा वाले को रस प्राप्त नही हो सकता, इसी प्रकार उन जीवो की भी व्यवस्था है।

देखो, जब मनुष्य का जीव सुषुप्ति दशा मे रहता है तब उसको सुख वा दुःख की प्राप्ति कुछ भी नही होती। क्योंकि वह शरीर के भीतर तो है परन्तु उसका बाहर के अवयवो के साथ उस समय सम्बन्ध न रहने से सुख-दुःख की प्राप्ति नही कर सकता।

और जैसे वैद्य वा आजकल के डाक्टर लोग नशा की वस्तु खिला या सुंघा कर रोगी पुरुष के शरीर के अवयवो को काटते व चीरते है, उनको उस समय कुछ भी दुःख विदित नही होता, वैसे वायुकाय अथवा अन्य स्थावर शरीर वाले जीवो को सुख व दुःख प्राप्त कभी नही हो सकता।

जैसे मूर्च्छित प्राणी सुख-दुःख को प्राप्त नही कर सकता, वैसे वायुकायादि के जीव भी अत्यन्त मूर्च्छित होने से सुख-दुःख को प्राप्त नही हो सकते। फिर उनको पीडा से बचाने की बात सिद्ध कैसे हो सकती है[2] ?

महर्षि दयानन्द का इस विषय मे स्पष्ट मत है कि वायुकायादि जीव हो या वृक्ष आदि स्थावर के जीव, सब अत्यन्त मूर्च्छित अवस्था मे है। इन्हे सुख-दुःख का लेश भी नही होता अतः इनके उखाडने-काटने मे पाप भी नही लगता।

---

१ साख्य द० ५।२७

२. सत्यार्थ प्रकाश समु० १२, पृ० ७००-७०१

महर्षि दयानन्द का यह मत वेदसम्मत है—

महर्षि दयानन्द ने जहाँ सांख्यदर्शन का प्रमाण देकर यह सिद्ध किया है कि ज्ञानेन्द्रियो के अभाव मे जीव उस-उस इन्द्रिय से होने वाले सुख-दुःख की अनुभूति नही कर सकता, वहाँ उन्होने वृक्षादि मे स्थित जीव को अत्यन्त मूच्छित अवस्था मे बतलाया है। यह उनकी कल्पना ही नही है अपितु वेद मे भी ऐसा ही लिखा है। वहाँ वृक्षो को 'ऊर्ध्वस्वप्न' अर्थात् स्वप्न से ऊपर बतलाया गया है[1]। स्वप्नावस्था से ऊपर सुषुप्ति ही होती है। अत वेदानुसार भी वृक्ष सुषुप्ति अवस्था मे है, अत उनके उखाडने-काटने आदि मे पाप नही लगता। वेद ने पशुओ का दूध तथा औषधियो के खाने का भी आदेश दिया है[2]। जबकि पशु जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनो अवस्थाओ को प्राप्त होते हैं तथा मारने-काटने या घाव करने पर उन्हे दुःख की अनुभूति होती है, अत उनके मारने आदि मे पाप लगता है। कुछ लोग यह भी प्रश्न करते हैं कि यदि किसी को मूच्छित करके मार लिया जाए तब तो उसके मारने मे भी पाप नही होना चाहिए क्योकि उसे भी दुःख की अनुभूति नही होगी। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या परमेश्वर ने किसी को स्वभाव से ही मूच्छितावस्था मे उत्पन्न किया है अथवा उसकी वह अवस्था कृत्रिम बनाई गई है? यह ऐसे ही है जैसे एक व्यक्ति को प्रभु ने उसके कर्मों के कारण दरिद्र बनाया हो तथा दूसरे को किसी ने उसका सर्वस्व अपहरण करके दरिद्र बना दिया हो तथा फिर यह तुलना की जाए कि जब एक को प्रभु ने दरिद्र बनाया है तब दूसरे को हमने दरिद्र बना दिया तो हमे पाप कैसा? इसी प्रकार जिसे परमात्मा ने स्वभाव से अत्यन्त मूच्छित अवस्था वाला बनाया है उसी के काटने आदि मे पाप न लगेगा किन्तु जिसे आपने मूच्छित किया है उसके मारने मे दोष अवश्य लगेगा, क्योकि आप परमेश्वर की व्यवस्था मे अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए दखल दे रहे है। परमेश्वर की व्यवस्था का उल्लंघन पुण्य कैसे हो जाएगा? वह तो पाप ही रहेगा। अत उस व्यवस्था का तोड़ने वाला पापी अवश्य होगा।

उपर्युक्त समस्या का एक अन्य प्रकार से समाधान

इस बात को एक अन्य प्रकार से भी समझाया जा सकता है। हमे जीवित रहने तथा कार्य करने के लिये पाँच कोशो की अपेक्षा है, जो इस प्रकार हैं—

१) अन्नमयकोश—यह त्वचा से लेकर अस्थिपर्यन्त का समुदाय पृथिवीमय है।

२) प्राणमयकोश—इसके अन्तर्गत प्राण, अपान, समान, उदान तथा व्यान आदि प्राण के भेद आते है। यह कोश जीवन मे सहायक है।

३) मनोमय कोश—यह मन, अहकार तथा वाणी, पैर, हाथ एव मलमूत्रेन्द्रिय, इन पाँच कर्मेन्द्रियो का समुदाय है।

---

१ अस्थुर्वृक्षा ऊर्ध्वस्वप्ना ॥ अथर्व० ६।४४।१

२ पय पशूना रसमोषधीनां बृहस्पति सविता मे नियच्छवात् ॥ अथर्व० १९।३१।५

४) विज्ञानमय कोश—इसमें बुद्धि, चित्त तथा कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका, ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ आती हैं। इसी से जीव ज्ञानादि व्यवहार करता है।

५) आनन्दमयकोश—इसमें प्रीति, प्रसन्नता तथा न्यून या अधिक आनन्द की प्रतीति होती है[1]।

इन पाँच कोशो मे से ज्ञान आदि का व्यवहार, चाहे वह सुखात्मक हो अथवा दु.खात्मक, तब तक जीव नही कर सकता जब तक उसे विज्ञानमय कोश न मिले। महर्षि दयानन्द जी सत्यार्थ प्रकाश के नवम समुल्लास मे कोशो का स्पष्टीकरण करते हुए, विज्ञानमय कोश का स्वरूप बतला कर आगे लिखते है कि—'इसी से जीव ज्ञानादि व्यवहार करता है।' अर्थात् इस कोश के बिना जीव ज्ञानादि व्यवहार करने मे सर्वथा असमर्थ है। यदि किसी समय सुषुप्ति अथवा मूर्च्छा के कारण जीव का यह कोश कार्य नही करता तो उस जीव को उस समय सुख या दु ख की अनुभूति नही हो सकती।

परमपिता परमेश्वर दयालु तथा न्यायकारी है। वह सर्वज्ञ है, अत जानते है कि वृक्षादि के बिना मनुष्य आदि प्राणियो का जीवन भी नही चल सकता। अत ईश्वर ने ऐसी व्यवस्था बनाई है कि जिससे हम कन्द-मूल आदि को खाकर जीवनयापन भी कर सकें तथा उन्हे किसी प्रकार दु ख भी न हो। उन्हे दु ख न होने से व्यक्ति को उनके उखाडने-काटने आदि मे पाप भी न लगे। क्योकि पापपुण्य का सम्बन्ध किसी को दु ख-सुख होने से है, जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं।

यह व्यवस्था इस प्रकार है कि पाँचो कोशो मे से वृक्षादि के अन्नमय एव प्राणमय कोशों को विकसित किया गया है। अन्य कोशो के विकसित न होने से इन्हे सुख या दु ख की अनुभूति नही होती। क्योकि हम पहले ही बतला आए है कि सुख-दु ख का अनुभव बिना विज्ञानमय कोश के जीव नही कर सकता। वैसे निष्प्रयोजन वृक्षादि के काटने से समाज की पर्यावरणदूषण रूप हानि होने से व्यक्ति पाप का भागी बनने से बच नही सकता।

इस प्रकार मानव, पशु-पक्षी आदि मे विज्ञानमय कोश के विकसित होने से उन्हे मारने पर उन्हे दु ख होता है तथा मारने वाले को पाप लगता है। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि आनन्दमय कोश पशुओ का भी विकसित नही है। अत वे ऐन्द्रिक सुखो को प्राप्त कर सकते है, समाधिजन्य आनन्द को नही। यह विभेदकरेखा मानव तथा पशु के बीच सदा रहेगी। मानवयोनि की श्रेष्ठता है भी इसी आनन्द की प्राप्ति करने मे। वृक्षादि मे केवल अन्नमय और प्राणमय कोशो का विकास होने से उन्हे सुख-दु ख की अनुभूति नही होती, अत इनके उखाडने, काटने तथा खाने मे पाप भी नही लगता। अण्डे के गर्भरूप होने तथा मलिन स्थान से उत्पन्न होने से वह भी खाद्य नहीं हो सकता।

---

१. इसकी व्याख्या के लिये सत्यार्थ प्रकाश का नवम समुल्लास देखें।

इस समस्त विवेचन से पाठक समझ गए होगे कि क्यो पशु आदि के मारने में व्यक्ति पाप का भागी बनता है तथा क्यो वृक्षादि के आवश्यकतानुसार उखाड़ने-काटने आदि से पाप नही लगता। अत हमे पशु, पक्षी, मछली, अण्डा आदि के भक्षणरूप पाप से बच कर, शाक, पात, कन्द, मूल,. फल, फूल आदि को ही अपने भोजन का अग बनाना चाहिये तथा मासादि भक्षण त्याग कर, पाप एव रोग से अपनी रक्षा करनी चाहिये।

डा० कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

— डा० रामप्रकाश अग्रवाल
परमार्थ निकेतन, स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश)

प्रभाकर जी का पहले नाम सुना, फिर रूप देखा, फिर काम देखा और इन तीन सोपानो से गुजर कर उनके साथ वह तादात्म्य स्थापित किया जो एक अध्यापक और पाठक, एक लेखक और सच्चे साहित्यकार के साथ होना चाहिये। यही सारस्वत-साधना है, यही वाङ्मय विमर्श है, यही वाणी का वरदान है। इस प्रकार का तादात्म्य ही मेरे पाठकीय, अध्यापकीय और साहित्यिक जीवन का साध्य रहा है। प्रभाकर जी की रचनाये मेरे साहित्यिक आस्वाद की कसौटी बनी है और उनके माध्यम से मुझे साहित्य-शास्त्र, साहित्य-दर्शन और साहित्य-कला की परिभाषा और विवेचना मे अभिनव आयाम प्राप्त हुए है। अत आज भी, उनके ८३वें जन्मदिन (२९ मई) के स्वागत मे, उनकी समस्त रचनाओ के निर्माण के लिये किसी एक उपाधि, किसी एक विशेषण, किसी एक शब्द का चयन करना चाहता हूँ, पर एक से काम नही चल रहा है। अत. सफल एव सिद्ध साहित्यकार की, प्रभाकर जी के माध्यम से, यथासम्भव सही परिभाषा करने के लिये मैने दो पदबन्ध चुने हैं—

'शब्द-शिल्पी' और 'शब्दान्तर्यामी'।

इन दो शब्दो का अन्तर और दोनो का पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट करके आदर्श साहित्य की रूपरेखा तथा प्रभाकर जी की रचनाओ मे उनके लक्षण एव उदाहरण प्रस्तुत करने से पूर्व, मैं उनके साथ अपने परिचय के विकास पर दृष्टिपात करना आवश्यक समझता हूँ, क्योकि उनमे कुछ सस्मरणो का सम्बन्ध साहित्यिक-सस्कारो के साथ जुड गया है। विगत चालीस वर्षो मे उनके बाह्य साक्षात्कार से लेकर आध्यात्मिक सम्बन्ध का जो अनुभव किया है, वह वस्तुत एक पाठक और लेखक एव एक अध्यापक और साहित्यकार की सहचर्यमयी सुखद यात्रा की रमणीय कथा है। इस कथा के तीन खण्ड हैं—कीर्ति-श्रवण, वेश-दर्शन और वाणी-अवगाहन।

प्रभाकर जी का प्रत्यक्ष परिचय मुझे मेरठ मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के अवसर पर १९४८ मे प्राप्त हुआ। उससे पूर्व, पिछले दो वर्षो मे मेरठ कालिज मे अध्यापनरत होने के साथ-साथ मैं उनका नाम सुनता रहा था। उससे मैंने उनके

विषय मे यह अनुमान किया था कि वे एक प्रसिद्ध, यशस्वी काग्रेसी नेता रहे हैं और अब एक नये कैरियर, विशेषतः पत्रकारिता मे प्रवेश की तैयारी कर रहे हैं। इस तैयारी मे हिन्दी के एक यशस्वी पत्रकार, साधक, लेखक और सिद्धसाहित्यकार की रचना का इतिहास निहित होगा, ऐसी कल्पना मेरी तब नही थी।

अत उनके परिचय के प्रति मेरी ललक एक ख्यातिप्राप्त काग्रेसी नेता का सान्निध्य प्राप्त करने भर की थी, न कि किसी आदर्श साहित्यकार का साहचर्य प्राप्त करने की। परन्तु जब उक्त साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन की समाप्ति पर अगले दिन मैने उन्हे मेरठ की सुप्रसिद्ध कहानीलेखिका स्व० कमला चौधरी के सभाकक्ष मे एक कविगोष्ठी के सचालक के रूप मे देखा, तो मेरे श्रवणप्राप्त परिचय के पादप मे दर्शनप्राप्त परिचय की एक नई शाखा फूटी और मैने अनुभव किया कि यह व्यक्ति हमारे देश के नये इतिहास का एक काग्रेसी कर्णधार ही नही, अपितु आधुनिक हिन्दीसाहित्य की नित्यनूतन विकासमयी भाषा का सूत्रधार भी प्रतीत होता है। उनके धवल काग्रेसी परिधान और धोती-कुरते की विशुद्ध भारतीय धज्जा मे सहज आत्मविश्वासमयी प्रसन्नमुद्रा के विवर से प्रस्फुटित प्राजल गद्यधारा की ज्योति ने मुझे पहली बार उसी प्रकार के सम्मोहन मे लपेट लिया, जिस प्रकार १६४० ई० मे एम०ए०-हिन्दी की परीक्षा की तैयारी के समय डा० नगेन्द्र के 'साकेत एक अध्ययन' ने लपेटा था। डा० नगेन्द्र ने जिस प्रकार मौलिक साहित्यास्वाद के सस्कार अपनी कृति के द्वारा मेरे मन मे अकुरित किए थे, उसी प्रकार एक परम नि्पुण और कुशल गोष्ठीसचालक के रूप मे प्रभाकर जी की वाग्मिता ने मेरे मन मे कदाचित पहली बार गद्यशैली की कवित्वमयता अथवा सहृदयजन की सहजभाषा मे निहित नैसर्गिक काव्य की रमणीयता की परख के सस्कार पैदा किए थे।

मैने उस दिन कुछ गम्भीरता से समझने की चेष्टा की कि भाषा की सम्मोहकशक्ति कहाँ रहती है, भाषा पर अधिकार का क्या अर्थ होता है, और व्यक्तित्व तथा अभिव्यक्ति का पारस्परिक सम्बन्ध क्या होता है? आज चालीस वर्ष बाद अपने अध्यापक और समीक्षक जीवन का सिहावलोकन करते हुए मुझे इस अतीत-यात्रा मे अनायास ही 'प्रभाकर' जी का उपनाम, मुख्यनाम की अपेक्षा इसलिए अधिक सार्थक प्रतीत हो रहा है क्योकि इस लेखक ने भाषा की नई 'प्रभा' की ओर मुझे आकृष्ट किया है। इस नई 'प्रभा' ने मेरे यत्किचित् अध्यापनकौशल मे विशिष्ट योगदान किया है। एक कुशल अध्यापक और एक सिद्धलेखक, दोनो के ही कर्म मे शब्दशिल्प का अभ्यास अनिवार्य है। मुझे लगता है कि मैंने प्रभाकर जी के शब्दशिल्प को कुछ अन्य साहित्यसृष्टाओ के समान अपनी अध्यापकीय वाणी मे आत्मसात किया है। उनका अनुरोध रहा है कि मै लेखक भी बनूँ, पर उनका समीक्षक बनने मे जो सुख मुझे मिलता है, वह लेखकत्व मे अलभ्य होगा। अत एक श्रेष्ठ साहित्यकार की साधना मे शब्दशिल्प और शब्द की गहराइयाँ, ऊँचाइयाँ एव विस्तार देखना ही मेरा साध्य रहा है। प्रभाकर जी ने साहित्यसृजन के लिए शब्दब्रह्म की आराधना की है और मैंने साहित्यास्वादन के लिए। उपासक हम दोनो ही है। यही हमारा तादात्म्य है।

परिचय का दूसरा सोपान था मेरठ कालिज में १९६२-६३ ई० के आस-पास का दीक्षा-समारोह और वार्षिकोत्सव तथा उस अवसर पर श्रेष्ठ छात्रो के लिये पुरस्कार हेतु उत्तम पुस्तकों का चयन। अनेक प्रकाशको तथा पुस्तकविक्रेताओ द्वारा जुटाई गई प्रभूत पुस्तकराशि मे से लगभग सौ पुस्तको का एक-दो दिन या कुछ घण्टो मे चयन कठिन कार्य था, विशेषत इसलिए कि बहुत-सी नई पुस्तके सामने थी और उनमे से चयन के लिए कुछ अध्ययन, विषयसूची पर दृष्टिपात और पन्नो की उलट-पलट करना तो अनिवार्य ही था। इसी क्रम मे सहसा कुछ शीर्षको पर मेरी दृष्टि पडी और लगा कि हिन्दी की अभिनव-सरस्वती की सुहागबिन्दी ही मुझे दिख रही है। इस तरुण हिन्दी की सुहागबिन्दी की नूतन किरणे थी – दीप जले शख बजे, माटी हो गई सोना, आकाश के तारे धरती के फूल, क्षण बोले कण मुस्काये, महके आँगन चहके द्वार, बाजे पायलिया के घुँघरू— और इन छ शीर्षको ने मेरा घण्टो का काम मिनटो मे निबटा दिया।

प्रभाकर जी की लेखनी का सम्मोहन 'ज्ञानोदय पत्रिका' के द्वारा मन पर व्याप्त हो चुका था, अब बिखरे लेखग्रन्थो मे कायाग्रहण कर सामने आया था। अत व्यक्तित्व को अतरग एकाग्रता के साथ देखने की सुविधा थी। इन छ ग्रन्थो के पाँच-छ सैट मैंने पुरस्कार के लिए चुन लिए और मन मे सकल्प किया कि कभी पाठ्यक्रम की समिति मे भाग लेने का अवसर मिला तो आधुनिक हिन्दीसाहित्य के इन अलकारो से तरुण छात्र-छात्राओ के कण्ठ को प्रतिध्वनित करने का प्रयास करूँगा। यह सकल्प शुभ था, शिव था, सुन्दर था। इसमे कोई स्वार्थ, कोई पक्षपात, कोई प्रलोभन न था। अत शिवसकल्प की सिद्धि मुझे मेरठ विश्वविद्यालय के प्रथम हिन्दी पाठ्यक्रमनिर्माता के रूप मे प्राप्त हुई १९६६-६७ मे। अब मेरा मनोद्वन्द्व केवल यह था कि किस ग्रन्थ का चयन किस कक्षा के लिए किया जाए?

मेरठ विश्वविद्यालय की स्थापना १९६६-६ मे हुई थी और १९६८ मे पहला पाठ्यक्रम तैयार किया गया था। कुछ विषयो के लिए आनर्स कक्षा की भी स्वीकृति दी गई थी। हिन्दी के लिए इसकी स्वीकृति प्रयोगशील प्रथम कुलपति डा० रामकरण सिंह ने प्रदान कर दी। अत चयन का मार्ग प्रशस्त हुआ और मैने अनुभव किया कि प्रभाकर जी की रचनायें आनर्स कक्षा के लिए अधिक उपयुक्त होगी। बी०ए० का सामान्य छात्र उनमे प्रादुर्भूत गद्य-शैली का स्तर सम्यक्‌रूप मे परख नही पाएगा और एम०ए० के छात्र को साहित्यशास्त्र की जिस चौकी पर बैठाने का प्रयत्न किया जाता है, उससे प्रभाकर जी की परम्परा भिन्न है। उन्होने परम्परा का परिवर्तन और भाषाशैली के नये मोडो की उद्‌भावना अपनी रचनाओ मे की है। उनकी रचनाओ के द्वारा हिन्दीसाहित्य के नये अकुर प्रस्फुटित हुए हैं और न केवल गद्य की कई विधाओ—सस्मरण, रिपोर्ताज और रेखाचित्र आदि की स्थापना और परिष्कार हुआ है, अपितु गद्यसाहित्य के लिए साहित्यशास्त्र के अभिनव अध्याय रचने की आवश्यकता प्रादुर्भूत हुई है। इस नये साहित्यशास्त्र की रूपरेखा रचित करने के लिए स्नातक से स्नातकोत्तर के प्रवेशद्वार के रूप मे 'आनर्स' कक्षा ही उचित प्रतीत हुई। इसमे थोडे छात्र रहते थे, आठ या दस। उनके बीच गद्य के लालित्य और गद्य की अभिनव विधा को समझने का यथेष्ठ अवसर मिला। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी 'सस्मरण' के आचार्य,

रायकृष्ण दास गद्यगीत के प्रवर्तक, महादेवी वर्मा रेखाचित्रो की अद्भुत सृष्टा और आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ललितनिबन्धो के सूत्रधार के रूप मे प्रतिष्ठित हो चुके थे, तथा रामवृक्ष बेनीपुरी नाटकीयगद्य की हृदयग्राही शैली का प्रवर्तन कर चुके थे। रावी की दोहे जैसी लघुकथाएँ भी हिन्दीगद्य का नूतन शृगार कर रही थी। तभी आनर्स कक्षा मे पहले 'दीप जले शख बजे', और उसके बाद 'क्षण बोले कण मुस्काये' पढाते समय छात्रो की तन्मयता ने तकाजा किया कि इन गद्यलेखो की शास्त्रीय परिभाषा की जाए। पर जो परिभाषा की सीमा मे बँधने को तैयार न हो, उसे परिभाषा मे बाँधा कैसे जाए ? और क्यो बांधा जाए ? प्रभाकर जी ने अपने जीवन के पग-पग को इन लेखो मे उड़ेला है, स्वतन्त्रता के इतिहास की एक-एक कडी मे भरे सगीत को परखा है, भारतीय बस्तियो, खेतो, गलियो, दुकानो, स्टेशनो, दफ्तरो, विद्यालयो, थानो, कारागारो मे पलते भारतीय हृदय के दर्शन किये है और भारतीय जनता के स्वभाव, सस्कार, चरित्र और श्रद्धा के चित्राँकन मे नवीन 'वन्देमातरम्' का गायन किया है। आनर्स के छात्रो को परिभाषा मैंने नही बताई, वरन् उनसे ही पूछी और उत्तर मिला –"रहने ही दीजिये, बस एक-दो लेख ही आहिस्ता-आहिस्ता पढा दीजिये, तन्मय होने दीजिये, ताकि हम स्वय उनकी परिभाषा कर सकें और सूक्ष्म मे विराट को देख सके। हमें तो इन लेखो मे सम्पूर्ण साहित्य प्राप्त हो रहा है, हमे उनसे उत्तम गद्यरचना का शिक्षण मिल रहा है, इन्हे गद्य और पद्य की परिधियो मे नही बाँधा जा सकता। ये केवल साहित्य ही नही हैं, इतिहास भी तो है, समाजशास्त्र भी तो है, राजनीतिशास्त्र भी है, दर्शन भी है और विज्ञान भी है।"

उन छात्रो की अनुभूति मे मुझे एक सूत्र मिल गया और वह यह था कि साहित्य यदि सहितता की विधा है तो उसका अर्थ यह भी होना चाहिए कि वह विधाओ की विधा है, शास्त्रो का शास्त्र है, उसमे ज्ञान और अनुभूति की समग्रता रहती है। श्रेष्ठ साहित्य मे विभिन्न विधाये और विविध शास्त्र, देवमंदिर मे अनेक मूर्तियो के बीच एक ही अद्वैत देव का दर्शन कराते है। इसीलिए साहित्य को 'शब्दब्रह्म' की साधना माना गया है और उसके आस्वाद को ब्रह्मानद का सहोदर कहा गया है। आनर्स कक्षा के छात्रो की तन्मयता के स्वरूप ने मुझे ब्रह्मानद का प्रत्यक्षीकरण कराया था और जहाँ तक मुझे स्मरण आता है सभी को प्रथम श्रेणी के अक प्राप्त होते थे। मुझे सतोष मिला कि बिना साहित्य-शास्त्र बाँचे, बिना लक्षण निर्धारण किये, बिना सूत्रो को रटाये, मैंने एक श्रेष्ठ साहित्यकार की रचनाओ द्वारा निगमन पद्धति से अपने छात्रो के मानस मे साहित्याचार्यत्व का बीज-वपन कर दिया है। उन्हे अनजाने ही साहित्यशास्त्र का प्रशिक्षण मिल गया था। इस प्रकार हिन्दी आनर्स के छात्र हिन्दी एम ए मे साहित्यशास्त्र की ताजी भूमिका के साथ प्रविष्ट होते रहे। मेरा अध्यापकीय प्रयोग सफल हुआ, अर्थात् एक ओर साहित्यशास्त्र के प्रारमिक प्रशिक्षण की नीव स्थापित हुई और दूसरी ओर आनर्स कक्षा की सार्थकता भी प्रमाणित हो गई।

अब हम श्रद्धाँजलि-निबन्ध के शीर्षक का विवेचन कर ले और उसकी व्याख्या द्वारा साहित्यदेवता और उसके आराधक की वर्षगाँठ का प्रमाण प्रदान कर दे।

प्रश्न यह है कि 'साहित्य' शब्दशिल्प की कारीगरी है, या शब्द मे निहित अपार ऊर्जा, प्रकाश, सक्रियता, सवेदना आदि के रूप मे विद्यमान किसी महान शक्ति के साक्षात्कार, अनुभव और अभिव्यक्ति का प्रयास है ? अग्रेजी का शब्द "लिटरेचर" वर्ण-सयोजन और शब्दयोजना की कला का सकेत करता है, जबकि सस्कृत का शब्द 'साहित्य' शब्द और अर्थ की सहितता का वाचक है। एक आचार्यवर्ग शब्द और अर्थ की प्रथकता मानता ही नही, अर्थात् शब्दमात्र मे अर्थ रहता ही है। उसे झझोर कर, झकझोर कर, झनझना कर उसमे से अर्थ खोज लेना ही साहित्यसाधना और कला है। वस्तुत. इन तीनो मे कोई अन्तर नही है। 'लिटरेचर' का अर्थ भी ऐसी वर्ण-योजना अथवा शब्दसयोजन से है जो भावात्मक, सवेदनात्मक प्रभाव उत्पन्न कर दे (टु काज इमोशनल इफेक्ट, आक्सफोर्ड डि.), और शब्द तथा अर्थ की सहितता का सकेत भी इसी ओर है अर्थात् अभीष्ट अथ के लिए सही, उपयुक्त शब्द की खोज। इसी दृष्टि से कृति या सिद्धसाहित्यकार को शब्दो या 'शब्द' मात्र का ,अन्तर्यामी कहा जा सकता है। जिस प्रकार एक निपुण आखेटक आरण्य का अन्तर्यामी होता है, एक कुशल गोताखोर उदधि का अन्तर्यामी होता है, एक विपदगामी आकाश का और ज्योतिषी नक्षत्रो का अन्तर्यामी होता है, उसी प्रकार सिद्धसाहित्यकार शब्द का अन्तर्यामी होता है। भगवान ही भक्त के हृदय मे निवास नही करते, अपितु भक्त भी भगवान के हृदय मे निवास करते है। भगवान राम आजीवन हनुमान के ऋणी रहे। जिस महाजन का ऋण चुकाया ही न जा सके, जिसका मूलधन ही मूल्यातीत और उसका ब्याज सख्यातीत हो, तो उसका भुगतान असम्भव ही होगा।

ऐसी स्थिति मे ऋणदाता के प्रति ऋणिया का हृदय सदैव कृतज्ञ ही रहेगा अर्थात् उसके हृदय मे उसका महाजन सतत् विद्यमान रहेगा। हनुमान, सीता, लक्ष्मण, शबरी और राधा तथा उद्धव आदि इसी कोटि के सिद्धभक्त थे जो स्वय भगवान के हृदय मे निवास करते थे। राधा, श्याम मे समाई हुई थी, सीता "पिय हिय की जाननिहारी" थी, लक्ष्मण राम के सकेतो को निमिषमात्र मे जान लेते थे, और हनुमान तो उनकी पलको के पहरेदार ही थे।

यह 'अन्तर्यामित्व' साहित्य का दर्शन भी है, विज्ञान भी है और कला भी। भक्ति-साधना का यह मूलतत्व है और सच्चा साहित्यकार वास्तव मे आदर्श भक्त ही होता है। भक्तिभाव के बिना उत्कृष्ट, युग-युगजीवी और लोकव्यापी अमर सगीत जैसे साहित्य का सृजन असम्भव ही होता है। तो प्रभाकर जी की भक्ति किस श्रेणी की है? वे किसके भक्त है, किसके हृदय मे विराजते है, और कौन उनके हृदय मे विराजता है ? मेरे लिये इसका उत्तर स्पष्ट है, क्योकि मैं उनके साहित्य का सहज आस्वादक होने के नाते उनके शब्दो का अन्तर्यामी हूँ। उनके ही शब्दो का नही, वरन् शब्द की अन्तर्यात्रा का नया प्रस्थान मुझे उनकी रचनाओ से प्राप्त हुआ है। मैं कृतज्ञ हूँ-मेरठ कालिज मे आनर्स कक्षा के उन छात्र-छात्राओ का भी, जिनके साथ मुझे राष्ट्र की अन्तर्यात्रा का सुअवसर मिला और साहित्य-दर्शन की अभिनवदृष्टि प्राप्त हुई।

भक्त, शिल्पी और साहित्यकार एक ही माता और एक ही पिता की सन्तान हैं। उनके सस्कार और साधना एक समान होती है। भक्ति हृदय की पवित्रता, परिष्कृत राग और निश्छल आत्मसमर्पण है। उसमे निहित रागतत्व जब अपने अनुराग को मूर्तिमान करना चाहता है अर्थात् अनुराग के आलम्बन को प्रत्यक्षरूप मे देखने का प्रयास करता है, तब भक्त के द्वारा किसी प्रतिमा का सृजन होने लगता है। यह प्रतिमा स्थूलपाषाण, या चित्र-फलक सगुण साकाररूप मे उभरती है, पर सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम उपकरणो की ओर अग्रसर होती हुई शब्दो तथा रागो मे उभर कर आती है।

इस कलात्मक उपासना मे कोई श्रेणी-विभाजक अनावश्यक है, क्योकि उपासना का स्रोत या आसन एक ही जैसा रगरचित हृदय होता है। हिन्दी के स्वर्णयुग के भक्त और सन्तकवि सच्चे उपासक थे, सगुण और निर्गुण का विभाजन केवल आनुषगिक है। वे सच्चे उपासक थे, इसीलिए श्रेष्ठ साहित्यकार प्रमाणित हुए। वे लक्ष्य थे, लक्षणो का निर्धारण उनकी रचनाओ के आधार पर हुआ। तुलसी, सूर, कबीर, मीरा, घनानन्द आदि की रचनाओ के द्वारा हिन्दी का नया साहित्यशास्त्र प्रकाश मे आया, जिसमे परम्परा आत्मसात थी और प्रगति का प्रस्थान था। इसी प्रकार गद्यप्रधान आधुनिक हिन्दी साहित्य के आधार पर आधुनिक साहित्यशास्त्र का आधुनिक, नवीन अध्याय लिखा जाने की आवश्यकता है। इस आवश्यकता की पूर्ति हो रही है, पर वह हल्की, धीमी और उथली प्रतीत होती है। हिन्दीगद्य के साधनारत शिल्पियो की रचनाये उपासक पाठको की प्रतीक्षा कर रही है जो अध्ययन और अध्यापन के व्यवसाय से बाहर स्वाध्याय, मनन और चिन्तन के सस्कारो से युक्त हो तथा आलोचना, समालोचना, समीक्षा आदि पाश्चात्य प्रणालियो को पौर्वात्य भाष्य, टीका, वार्तिक, निरुक्ति आदि की पाँडित्यमयी परम्परा के साथ जोडने की क्षमता रखते हो। हिन्दी के ललितगद्य की अनेक विधाओ मे दृश्य और श्रव्य का नूतन समन्वय विद्यमान है जिसके विवेचन के लिए भाषा-दर्शन और साहित्य-दर्शन दोनो का निरूपण अपेक्षित है।

भारतीय साहित्य आदर्शवादी है। उसकी प्रवृत्ति आस्था, आस्तिकता और आशा-वाद की है। वैदिक वाड्मय से लेकर आज तक जिस भारतीय साहित्य को राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता मिलती रही है, उसमे एक व्यापक मानवीय सस्कृति निहित है। उपनिषदो मे प्रस्फुटित "सर्वे सन्तु निरामया" और "सर्वे भद्राणि पश्यन्तु', वाल्मीकि रामायण मे आविर्भूत राम का "धर्मविग्रहत्व", और रामचरितमानस मे उनका मर्यादा पुरुषोत्तमरूप, तथा रामराज्य, और कामायनी का शिवत्व भारतीय साहित्य की मूलभूत प्रवृत्ति के द्योतक है। ये सभी उपासनाकाव्य के अन्तर्गत हैं। इन सभी मे एक प्रकार की भक्तिमयी भावधारा प्रतीत होती है। कभी यह ईश्वरभक्ति कहलाई कभी देवभक्ति, कभी देशभक्ति, कभी मानवभक्ति। वस्तुत इसमे भी पृथकत्व नही है। इसी लिये प्रभाकर जी की रचनाओ के मूल मे भी भारतीय सस्कृति का अनिवार्य तत्व 'भक्ति' विद्यमान है। वे शब्द के उपासक है, शब्द के अन्तर्यामी है, अत अनिवार्यरूप से शब्द के माध्यम

से महत्ता, उदात्तता, विराटता, अनन्तता, असीमता के अन्वेषी हैं। इस अन्वेषण में स्वयं उनका अन्तर्जगत उद्घाटित हुआ है, और इस अन्तर्जगत के आसन पर विराजमान हैं उनके देवतुल्य, "मिश्री से मीठे" पिता, "ततैया मिर्च जैसी तीखी" माता, जन्मभूमि देवबन्द की गलियाँ, खेत, खलिहान-पोखर, कर्मभूमि सहारनपुर के बाग-बगीचे, हाट-बाजार, थाना और कारागार। मातृभूमि भारत के ऐतिहासिक भवन, सभागार, संग्रहालय, रंगमंच और पडाल, तथा इन सबसे सम्बन्धित सामान्य मानव से लेकर असामान्य मानव तक की — किसान, मजदूर, मेहतर, हज्जाम, कुली से लेकर नवीन भारत के निर्माता राष्ट्रपुरुष गांधी, नेहरू, आजाद, तिलक जैसे नेताओ और मूर्धन्य कवियो तथा साहित्यकारो की — विभिन्न छवियों, मुद्राओ, वेशो और भगिमाओ मे अंकित 'असख्य मूर्तियाँ, प्रतिमाएँ, छायाएँ और चित्रावलियाँ'।

इस प्रकार उनकी रचनाओ ने आधुनिक भारत का इतिहास एक व्यापक सस्कृति के धरातल पर मूर्तिमान हुआ है। इन अनेक मूर्तियो मे एक ही मूर्ति भी देखी जा सकती है और इस एक ही मूर्ति मे अनेक मूर्तियाँ भी। इनमे एक ही हृदय का अन्वेषण है—मानव-हृदय का अन्वेषण। उस अन्वेषण की पगचाप शब्दो मे प्रतिध्वनित है। प्रत्येक पगचाप मे शब्द-यात्री का निजी हृदय से स्वर मिल रहा है और उस निजी हृदय का स्वर विश्व-हृदय के साथ मिल जाने को व्याकुल है।

अत अन्तर्यामी के अन्वेषण मे शब्द उनका सहयात्री बन कर चल रहा है। दोनो मे अभिन्न मैत्री है, दोनो का लक्ष्य एक है। शब्द को हृदय की खोज करनी है, और हृदय को शब्द की। प्रभाकर जी ने शब्द के माध्यम से हृदय को खोजा है और हृदय के माध्यम से शब्द को। यही उनकी साधना है, आराधना है, समाधि है। उनका राष्ट्रीय सघर्षमय जीवन उनकी पत्रकारिता की साधना मे साहित्य की कला बनकर प्रकट हुआ है।

शब्द के इस अन्तर्यामी को प्रत्येक पाठक के प्रणाम।

सूरदास का अवदान

—प्रोफेसर कृष्णदत्त वाजपेयी
पूर्व इतिहास विभागाध्यक्ष, सागर विश्वविद्यालय

निम्नांकित आठ छन्दो मे महाकवि सूरदास के कृतित्व के प्रति कतिपय नवीन विचार गुंफित है। पहला छन्द सूर के प्रमुख आराध्य श्रीकृष्ण के प्रति तथा दूसरा कृष्ण की अनन्य सहचरी राधा के प्रति है। राधा का भी ऐतिहासिक अस्तित्व था। साहित्य के अलावा पुरातात्विक प्रमाणो से भी इसकी पुष्टि हुई है। राधा-कृष्ण की प्रेम-गाथाएँ प्राचीन युग मे चम्बल नदी से लेकर गोदावरी तट तक के विस्तृत क्षेत्र मे अधिक प्रचलित थी। सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश मे अनेक पुरानी गाथायें अभी तक सुरक्षित हैं। सूरदास ने भागवत पुराण तथा अन्य कतिपय स्त्रोतग्रथो के साथ-साथ इन गेयगाथाओ से विशेष प्रेरणा प्राप्त की। उनके समय मे ब्रजक्षेत्र तथा विस्तृत विध्यक्षेत्र के नगरो, गाँवो और शिलागृहो मे राधा-कृष्ण की विविध गाथाएँ गूँजती थी। इसका उल्लेख, ब्रज और ब्रज-वासियो की चर्चा (छद ३-४ मे) करने के बाद, पाँचवे छद मे किया गया है। अगले दो छदो मे सूर की रचनाओ मे साहित्य-सगीत का पारंपरिक गुफन दर्शाया है। अन्तिम दो कवित्तो मे सूर का सास्कृतिक योगदान कथित है।

भारतीय सस्कृति और समाज के प्रति सूर के अवदान का सम्यक् विवेचन अभी अपेक्षित है। सूर इस परपरा की एक कडी थे जिसमे व्यास-वाल्मीकि से लेकर गोस्वामी तुलसीदास, आदि मनीषी उल्लेखनीय है।

(१)

अगुन-अनादि ब्रह्म कौ उतारि मथुरा मे
सगुन सरूप कौ अमित गान कीन्हो है।
जसुदा के लाल कौ बखान करि भूरि-भूरि
वात्सल्य रस कौ अमर करि दीन्हो है॥
यमुना के कूलन, कदबन के कुंजन मे
नदनद-लीला कौ मधुर मर्म चीन्हो है।
गोप अरु गोपिन के प्रान नटनागर को
सूर ह्वै कै निज हिरदय मे बास दीन्हो है॥

(२) राधा

वृषभानु–नंदिनी के पावन चरित गाइ,
नेह की निकाई कौ नवल रूप दीन्हो है ।
बालपन–यौवन औ प्रौढ़ता बखानि नीके,
चारुता, मनोज्ञता, प्रवीणता कौ चीन्हों है ।।
प्रेम–योग की पुनीत मूरति कौ धारि हिये,
ब्रज की वसुंधरा कौ राधामय कीन्हो है ।।
हाय, वा बियोगिनी के असुअन–वारिद सो
पूरो नभ ढाँपि, सारो जग बोरि दीन्हो है ।।

(३) ब्रज और ब्रजवासी

गोकुल औ नंदगाव, बरसाना, बृंदावन,
जिनकी चरन–रज धारि कै पुनीत भे ।
जिनके सनेही ग्वाल पाइ नेह मोहन कौ,
सुकृतिन मध्य नंदनंदन के मीत भे ।।
जिनकौ अमित प्रेम पाइ गोपिकान हू के
मन भे मयूर, गोरे गात नवनीत भे ।
तिनके चरित गाइ कवि पायो ज्योंति नयो,
सूर के मधुर पद गीतन के गीत भे ।।

(४) ब्रज का अमृततत्व

ब्रज अवनी कौ धन्य कियौ सूर जगती मे,
कंस के निहंता कौ विरद बगरायौ है ।
भगति औ नीति की, प्रतीति–प्रीति–रीतिन कौं,
सरस सलोने–सुठि गीतन मे गायौ है ।।
प्रकृति की छवि के अनंत रंग–रूपनि कौ
सहज बखानि, रास–रस सो अघायौ है ।
नंद–जसुदा के, गोप–गोपिन के, गायन के
अमृत सो छक्यो, ताते अमर कहायौ है ।।

(५) साहित्य और संगीत

सीही-सूरकुटी-परासौली मे निवास करि,
वास कियो स्यामा-स्याम-प्रेमिन के जिय मे ।

ब्रज धाम और ब्रज-बाहर जे गाथा रमी,
नगरन-गांवन मे, सिलाधर-हिय मे ।।
उनते प्रबोध पाइ, पायो ज्ञान ज्ञानिन सो,
सगुन उपासना कौ ज्योति जगी जिय मे ।
ब्रज भासा को कियौ सनाथ नाथ-चरित सो,"
थाती निज सौपि देह-नेह प्रिया-प्रिय मे ।।

(६)

गेय पद सूर के रमे असेस जन-मन,
पाइ स्याम राधिका सनेह मन भावनौ ।
नाद को प्रवाह सरस्यौ है कविता के मध्य,
ललित कलान कौ विकास भौ सुहावनौ ।।
कलित कलिंदजा की उच्छल तरगनि मे
लस्यौ सूर-काव्य राधा-कृष्ण सुखदायिनौ ।
शब्द-अर्थ कौ सुयोग उमॅग्यो है छन्दनि मे
रस कौ उछाह उमड्यो है अति पावनौ ।।

(७) सांस्कृतिक अवदान

भारतीय गरिमा कौ सील-सदाचारमय,
जीवन-सदेस सूर बरनित कै गये ।
ललितकला के शिव-सुन्दर प्रबोधनि कौ
मधुमय गेय-प्रेय पदनि मे दै गये ।।
व्यास वाल्मीकि भास कालिदास तुलसी को
पावन परम्परा कौ भासमान कै गये ।
वल्लभ की ज्ञान-रासि भक्ति-भावना मे ढारि,
कोटि जनै कौ उबारि, भूरि जस लै गये ।।

(८)

सूर, तुम मानव की ऋजुता-महानता कौ,
दया-दानसीलता कौ विकरित कै गये ।
प्रेम अरु त्याग की बिसालता बखान करि,
रूप के अनिद्य भाव प्रकटित कै गये ।।
लोकतत्व के उदात्त पच्छनि कौ ऊँचो करि,
प्राणिन मे नेह-भाव सुरभित कै गये ।
मानव-प्रकृति बीच समवाय पारिबै को,
गीता को सदेश साँचो मुखरित कै गये ।।

इतिहासज्ञ श्री डा0 सत्यकेतु जी विद्यालंकार

—डा० प्रभात शास्त्री, डी०लिट्०
प्रधानमंत्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद

भारतीय पुनर्जागरण को जो संबल और प्रबल प्रवाह का रूप आर्यसमाज के आन्दोलन ने दिया है, उसका मूल्यांकन कर पाना सम्भव नहीं है। वैदिकधारा से संपृक्त भारतीय मनीषा के मन्तव्यों के सहारे समाजसुधार और आर्षचेतना का उद्घोष करने में इस आन्दोलन का महनीय योगदान चिरस्मरणीय रहेगा। भारतीय राष्ट्रीयता के साथ इसका सम्बन्ध प्रारम्भ से ही रहा। प्राचीन वैदिकज्ञान एवं यज्ञ-याग की विधि के पुनर्प्रचलन के इसके प्रयास का एक उज्ज्वल पक्ष है। इसी के साथ वैदिकपद्धति का अभिनव रूप गुरुकुल कांगड़ी जैसे शिक्षणकेन्द्र हैं। इन संस्थाओं ने न केवल वेद के पारगत विद्वानों को संरक्षण एवं प्रश्रय दिया, वरन् इसने प्राचीन आयुर्वेद एवं अन्यान्य वैदिक विद्याओं और उनके स्वरूपों को संरचित करने का प्रयास किया है। ऐसी परम्परा के प्रतिनिधि के रूप में सत्यकेतु विद्यालंकार का व्यक्तित्व हमारे लिए प्रेरक एवं अभिनन्दनीय है।

१६ सितम्बर १९०३ में सहारनपुर में जन्मे श्री सत्यकेतु जी ऐसे बिरले विद्वान् हैं जिनका वैदिकज्ञान अपरिमित है। पेरिस विश्वविद्यालय से डी० लिट्० की उच्च उपाधि प्राप्त करके आपने साहित्य और इतिहास के क्षेत्र में कार्य प्रारम्भ किया। फलत. आपके विशद अध्ययन एवं लोकनिरीक्षण के परिणामस्वरूप अनेक ऐसे मानकग्रन्थों का प्रणयन हुआ जिनसे हिन्दी समृद्ध हुई। विशेषरूप से भारतीय इतिहास के क्षेत्र में आपके अवदान को हिन्दी जगत् ने महत्वपूर्ण माना और संवत् १९८६ में आपको "मौर्य साम्राज्य का इतिहास" पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने उस समय का सर्वोच्च पुरस्कार मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्रदान किया। एक सफल इतिहासकार के रूप में सत्यकेतु जी ने अपना विशेष स्थान बनाया है। आपके इतिहाससम्बन्धी खोजपूर्ण कार्यों की अपनी विशेषता है। ऐतिहासिक तथ्यों की संगति के साथ प्रवहमान भारतीय संस्कृति की मूलचेतना में पाठक को संपृक्त करते हुए आप युगसन्दर्भ के साथ अतीत का स्वस्थ सामंजस्य प्रस्तुत करते हैं। यह इतिहासदृष्टि प्राय. पश्चिम विद्वानों में नहीं थी। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार, महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, श्री काशीप्रसाद जायसवाल, श्री हेमचन्द्र जोशी, डा० रघुवीर, डा० सम्पूर्णानन्द और आचार्य नरेन्द्रदेव जैसे मनीषियों एवं इतिहासज्ञों की पंक्ति में सत्यकेतु विद्यालंकार जी की इतिहासदृष्टि पर विचार करना समीचीन रहेगा। बौद्ध-

काल का राजनीतिक इतिहास, भारत का इतिहास, अपने देश की कथा, भारत का प्राचीन इतिहास, भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन और नया सविधान, भारत का सास्कृतिक इतिहास, आदि ऐतिहासिक ग्रन्थो के माध्यम मे आपने भारतीय इतिहास के उत्थान-पतन की गाथा को सुशृंखलित किया है।

जैसा प्रारम्भ मे कहा गया है आपका अनुभव वैश्विक है। आपने एशिया और यूरोप के देशो का भ्रमण करके प्रचुर अनुभव प्राप्त किया और इसी आधार पर अपने देश और विश्व के राजनीतिक दर्शन, सविधान और वहाँ के जनजीवन का परिचय प्रस्तुत किया है। फ्रान्स की राज्यक्रान्ति ने कालचक्र को प्रभावित किया था। आपने इस विषय पर हिन्दी में उत्कृष्ट ग्रन्थो का प्रणयन करके जहाँ राष्ट्रभाषा के भण्डार को समृद्ध किया है, वही भारतीय राष्ट्रीयता के सघर्ष को भी प्रेरणा से अनुप्राणित किया था।

श्री विद्यालकार जी सफल उपन्यासकार भी है। आचार्य चाणक्य, पतन और उत्थान, अन्तर्दाह, कपनी का मैनेजिग डायरेक्टर, होटल मार्डन, आदि आपकी औपन्यासिक कृतियाँ उल्लेखनीय है। फ्रान्सीसी साहित्य के आधुनिक रचनाकार मोपासा की कहानियो का अनुवाद भी आपने किया है।

उत्तरप्रदेश विधान परिषद् के सम्मानित सदस्य तथा अनेक सस्थाओ के पदाधिकारी के रूप मे आपने अनेक जनोपयोगी एव ज्ञानवर्द्धक कार्यों का निष्पादन किया है। गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय को सप्राण बनाने मे आपका योगदान चिरस्मरणीय रहेगा।

श्री सत्यकेतु विद्यालकार जी एक जागरूक इतिहासज्ञ, राजनीतिक एव सवैधानिक विषयो के व्याख्याता एवं प्रवक्ता के रूप में समादृत है। उनके वैदुष्य का सम्मान करके हम अपने को ही गौरवान्वित करेगे।

प्राचीन भारत की मुद्राएँ

—डा० जबरसिंह सेंगर
रीडर, प्रा०भा० इति० विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्राचीन काल मे जब गिनती का आविष्कार नही हुआ था, तो अगुलियो का इशारा कर तथा उसके परे बहुत सारी गणना शब्द से हो जाया करती थी। इसी प्रकार वस्तुओ का आदान–प्रदान जिसे अग्रेजी मे बार्टर शब्द कहा गया है, होता था। ५ किलो गेहूँ देकर एक किसान जूते पहन लेता था। पर मनुष्य विकासशील विचारो का है, अतएव उसने एक क्रय-विक्रय का माध्यम मुद्रा चुना। पाश्चात्य विद्वान, भारतीयो के बारे मे एक भ्रम फैलाते रहे कि भारतीयो ने लिपि एव सिक्के बनाने का ढग विदेशियो से सीखा। एक दलील लिपि के बारे मे यह दी गई कि लिपि हम भारतीयो ने फिनिशिया से सीखी। पर मोहन जोदडो से जो सीलें मिली एव जो लिपि उन सीलो पर उत्कीर्ण है (हालांकि अभी तक पढ़ी नही जा सकी) उससे स्पष्ट हो गया कि भारत को लिपि सीखने के लिए विदेशियो का सहारा नही लेना पडा। इसी प्रकार मुद्रा अर्थात् सिक्को के विषय मे यह कहा गया कि भारत ने लिडिया से सिक्के बनाना सीखा। लीडिया का सबसे पुराना सिक्का ७०० ई० पू० का वहाँ उपलब्ध है।

भारत के प्राचीन सिक्को की तौल और बनावट का ढग बिल्कुल अलग है। यह किसी भी देश के सिक्को से मिलावट नही खाता है। दूसरी दलील यह दी जाती है कि ईरान के सम्राट दारा ने जब गाँधार, पेशावर आदि पश्चिमोत्तर भारत पर कब्जा किया था तो उनसे भारतीयो ने सिक्के बनाना सीखा। विद्वान ऐलन ने भी इस भ्रम को साकार करने मे मदद दी। दारा के सिक्को मे दूनी तौल के भारतीयो ने सिक्के ढलवाए। गाँधार के पास घिसे सिक्के (सिगलास) प्राप्त हुए है जो भारतीय सिक्को से तौल मे आधे है। विद्वान वासुदेव शरण अग्रवाल ने विभिन्न तौलो के आधार पर ऐलन के मत का खडन किया है। जहाँ तक सिक्को के प्रचलन का प्रश्न है, साहित्यसाक्ष्यो के आधार पर गौतम बुद्ध से पूर्व सिक्को का प्रचलन था। पूर्व मे चाँदी के टुकडो से मुद्रा का काम लिया जाता रहा होगा। पर जब प्रचलन बढा तो आवश्यक हो गया कि ठीक नाप-तौल एव एक विशेष चिन्ह बनाया जाए जिसको सार्वभौम सत्ता भी मान्यता दे। तदनुसार ये टुकडे, चिन्ह एव नाप-तौल के अनुसार निर्मित होकर सिक्को की सज्ञा मे आ गए। महात्मा गौतम बुद्ध के काल मे सिक्को की तौल ४० और २५ रत्ती की होती थी। यथा—तदा राजगहे बीसति मासको कहापणो होती।

तस्मात् पचमासको पादो।'[1] मनु महाराज ने भी इसी प्रकार उल्लेख किया है –

'द्वे कृष्णले समघृते विज्ञेयो रौप्यमाषक।'[2]

पाचाल नरेश के छटी शती के सिक्के का आकार सुडौल वृत्ताकार नहीं है। इस पर न कोई अक्षर है और न राजा की मूर्ति है। कुछ चिन्ह एव ४ बैल बने है। इन सिक्को को 'पच मार्क' सिक्को की सज्ञा दी गई। पाणिनी ने 'आहृत रूप्य[3]' शब्द का प्रयोग सिक्के के लिए किया है। इस सिक्के की तौल लगभग २५ रत्ती थी। इसी प्रकार एक चौकोर मुद्रा पाँचवी शती ई० पू०, नन्द वश के किसी शासक की मिली है। इसमे कुछ चिन्ह एक-दूसरे पर चढे हुए तथा सूर्यचिन्ह, षडर चक्र, हाथी, कुत्ता एव खजूर का पेड अकित है। इसकी तौल ३२ रत्ती है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र मे 'पण' शब्द से मुद्रा को पुकारा है। मनुस्मृति मे इसी को 'कार्षापण' कहा गया है। तक्षशिला मे १०५६ सिक्के भारतीय तथा २ ताजे सिकन्दर के सिक्के खुदाई मे प्राप्त हुए। इपसे यह स्पष्ट है कि सिकन्दर के आक्रमण से पूर्व भारतीय शासक सिक्के ढलवाते थे। बुद्ध से पूर्व सिक्के ४० और २५ रत्ती के, फिर नन्द और मौर्य वश के समय मे ३२ रत्ती के सिक्के प्रचलित हुए। यवन (इडोग्रीक) राजाओ ने अपने सिक्को पर राजा की मूर्ति, उपाधि एव नाम अकित करवाया। इसी का अनुकरण शक एव शुग शासको ने भी किया। मौर्यशासक के एक सिक्के पर ब्राह्मी लिपि अकित है। इसी प्रकार पजाब के एक शक राजा के सिक्के मे खरोष्ठी लिपि का प्रयोग है एव भाषा प्राकृत है। पाचाल के शुग राजा जयमित्र का ई० पू० दूसरी शती का ताँबे का सिक्का मिला है जिस पर ब्राह्मी अक्षरो मे 'जयमित्रस' लिखा है। इसी प्रकार शूरसेन नरेश गोमित्र के ताँबे की मुद्रा मे कृष्ण की मूर्ति बाँसुरी लिए बनी है। ब्राह्मी मे 'गोमित्रस' लिखा है।

प्रथम शती ई० मे कुषाण शासको के सिक्के बहुत प्रचलित हुए। ओइम कडफिसस का सोने का सिक्का बहुत प्रचलित था। इस पर 'राजाधिराज ओइम कडफिसस' अकित है। दूसरी ओर शिव दाहिने हाथ मे त्रिशूल एव बाएँ हाथ मे कमडल लिए दर्शाए गये है। इसी प्रकार से ताँबे, सोने के कुषाणकालीन सिक्के पर्याप्त मात्रा मे मिले है। कुषाणो के सिक्के अफगानिस्तान से लेकर पूरे भारत एव रूस की सीमा तक प्रचलित थे, क्योकि पर्याप्त मात्रा मे कुषाणकालीन सिक्के इस भू-भाग से प्राप्त हुए है।

कुषाणो के बाद स्वर्णयुग के शासक गुप्तवशीय शासक आते हैं। चन्द्रगुप्त प्रथम का सिक्का जिसमे कुमारदेवी भी खडी है, भारतीय वेशभूषा मे पत्नी को आभूषण देते हुए दिखाए गए है। सिक्के के ऊपर च न्द्र गु प्त ऊपर से नीचे लिखा गया है। ये सोने के सिक्के ८

१– विनयपिटक पराजिका – २

२– मनुस्मृति – ८/१३५

३– अष्टा० – ५/२/१२०

माने के बनने लगे थे। सिक्के की पृष्ठिका पर 'लिच्छिव' शब्द लिखा है जो तत्कालीन वैदेशिक नीति को सुदृढ करता है। इसी प्रकार से अनेक सिक्के—समुद्रगुप्त के अश्वमेध यज्ञ का द्योतक घोड़े वाला सिक्का, वीणावादक आदि तथा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के सिंह निहता आदि के साथ-साथ कुमारगुप्त, स्कन्दगुप्त के बहुत सिक्के भारतीय वेशभूषा के साथ दर्शाए गए हैं।

नवी शती में ब्राह्मण राजा श्री सामन्तदेव का चाँदी का सिक्का उल्लेखनीय है। सिक्के पर एक ओर नन्दी बैठा हुआ है, दूसरी ओर घोडे पर सवार राजा की मूर्ति है। इस शैली के सिक्के दिल्ली शासको के बारहवी शती तक मिलते रहे। कन्नौज के राजा भोज के चाँदी के सिक्के पर वाराह अवतार की शूकरमुखी प्रतिमा बनी है। दूसरी ओर देवनागरी मे 'श्री मदादि वराह' लिखा है। ग्यारहवी शती के प्रारम्भ मे महमूद गजनवी ने चाँदी का सिक्का ढलवाया – एक ओर अरबी मे कलमा–"ला इलाह इल्लल्लाह मुहम्मद रसूल इल्लाह, अल अमीर महमूद" दूसरी ओर सस्कृत मे—"अव्यक्तमेक मुहम्मद अवतार नृपति महमूद"[1] लिखा है। इस काल मे सस्कृत भाषा का पर्याप्त सम्मान था। राजपूत-काल के शासको ने सस्कृतभाषा को काफी सम्मान दिया। गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय के पुरातत्व सग्रहालय मे भी काफी मात्रा मे सिक्के हैं। इन सिक्को मे इंडोग्रीक सिक्को को छोडकर शेष सामग्री भारतीयता से ओत-प्रोत है। सिक्को पर भी भारतीय सस्कृति, धर्म एव सम्पन्नता परिलक्षित होती है।

१—'अय टक' महमूदपुर घटिते हिजरियेन सवति ४१८'—इस प्रकार भी कुछ विद्वान मानते हैं।

अस्तित्ववाद

—डा० यू०एस० बिष्ट
प्राध्यापक, दर्शन विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

१६वी शताब्दी मे जो नवीनज्ञान अपने शैशव की किलकारियो को छोड़कर प्रौढावस्था मे पदार्पण कर रहा था, अस्तित्ववाद उसी के विरुद्ध एक 'विरोध पत्र' था। जर्मन रूमानियत में अकुरित अस्तित्ववाद के जनक होने का श्रेय डेनमार्क निवासी सॉरेन कीर्किगार्द तथा जर्मन नीतिशास्त्री फेड्रिक नीत्शे को जाता है। ज्या पाल सार्त्र तथा यास्पर्स का नाम भी अस्तित्ववादी दर्शन मे उल्लेखनीय है। वास्तव मे सार्त्र ही एकमात्र ऐसे अस्तित्ववादी हैं जिन्होंने स्वय को अस्तित्ववादी घोषित करने मे सकोच नही किया।

प्रस्तुत लेख मे, मैं सॉरेन कीर्किगार्द की अस्तित्ववादी विचारधारा का मात्र उल्लेख करते हुए, ज्या पाल सार्त्र की रोचक विलक्षणता पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करूँगा। ऐसा मैं अपने सीमित ज्ञान, समय एव लेख की सीमा के उल्लघन के भय से कर रहा हूँ। उचित अवसर प्राप्त होने पर यास्पर्स महोदय के बारे मे कुछ कह सकूं, ऐसा प्रयास करूँगा। हो सकता है कतिपय दार्शनिको को, जैसा कई स्थलो पर होता है, सार्त्र सम्बन्धी मेरी विचारधारा अस्पष्ट, अधूरी या व्यर्थ लगे, अत. लेख को ज्ञानानुराग समझ कर ही अपनी सम्मति बनायें, ऐसी प्रार्थना है।

'अस्तित्ववाद' की मुख्य समस्या "सत्तावान होने' के अर्थ को समझने तथा मानवीय क्रियाओ के आधार की खोज है।"

इसका मुख्य उद्देश्य उन शर्तों का निदान और वर्णन करना है, जिनमे रहते हुए मनुष्य विभिन्न क्रियाएँ करता है। अपने 'तत्वचिन्तन' का शुभारम्भ, अस्तित्ववाद 'मानवीय-चेतना के वर्णन' से करता है। अर्थात् यह वाद मानवीयव्यवहार के इर्द-गिर्द ही घूमता है। कालीदास एव शेक्सपेयर के समान ऊँची उडान या शकराचार्य की तरह 'ब्रह्म' जैसे प्रत्ययो को यह निरर्थक एव अव्यवहारिक तथा आत्मवचना ही समझता है।

'व्यक्ति होने' का क्या अर्थ है? इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने के लिये इन्होने 'चेतना' (Consciousness) को माध्यम बनाया। 'चेतना' को इन्होने

'क्रियाशील', 'इच्छाशक्ति' तथा 'निश्चय करने वाली चेतना' के रूप मे समझा है। वैसे 'अमूर्त अवैयक्तिक' विचारण के मूल्य को कीर्किगार्द अस्वीकार नही करते, लेकिन इस मूल्य को वह 'मानवीय-स्थिति' पर लागू करने के प्रयास को 'अधेरे मे लाठी घुमाने' के समान समझता है। उसकी मान्यता है कि अवैयक्तिक विचारणा (सार= essence) की अमूर्ततायें अस्तित्व के बाद (after) हैं। मैं समझता हूँ कीर्किगार्द की इस मान्यता का जन्म विचाररहित चर्चगामी धार्मिको एव हीगलवादी दृष्टिकोणो के परिणामस्वरूप ही हुआ। यह बात उसकी निम्न पक्ति से स्पष्ट होती है —'चर्चगामियो' को प्रथमत 'इसाई बनना' सीखना चाहिए तथा हीगलवादियो को वैयक्तिक-दार्शनिक-दृष्टिकोण से ऊपर उठना चाहिए।

वे पुन कहते हैं अस्तित्ववान विषयी (subject) विज्ञान का पूर्ववर्त्ती होने के कारण किसी वैज्ञानिक वस्तु के रूप मे स्वय परिवर्तित नही हो सकता। उन्हीं के शब्दो मे — "विज्ञान को पौधो, पशुओ तथा तारो के बारे मे ही विवेचन करने दिया जाय, किन्तु 'मानव-भावना' के सदर्भ मे (regarding spirit) उस तरह विवेचन करना घृणास्पद एव अधार्मिक है।" कहने का तात्पर्य यह है कि सत्य तक पहुँचने के लिए, कीर्किगार्द 'अस्तित्वो' को तिरस्कृत करके 'सार-समूहो' पर ध्यान केन्द्रित करने को मूर्खता समझते है। यदि ऐसा किया जाए तो 'वे सत्य' जो हमसे सदा जुडे हुए रहते है, कभी भी हमे प्राप्त न हो सकेंगे, क्योकि सत्य अस्तित्व से बँधा रहता है न कि सार-समूह से।

स्पष्ट शब्दो मे कहा जा सकता है कि कीर्किगार्द के लिए सत्य वह है जो विषयगत (subjective) हो तथा जिसे हम प्रयत्न करके जानते तथा ग्रहण करते हैं।

हीगल द्वारा इसाईयत को तर्कसगत बनाने के प्रयत्न की विरोधास्पदता पर प्रहार करते हुए कीर्किगार्द कहते हैं कि कल्पनात्मक दर्शनशास्त्र हमे केवल खोखली कल्पना ही करा सकता है, हमारा मार्गदर्शन तो हमारी नैराश्यजनित गहन-भावनाएँ करती है। ये गहन-भावनाएँ तात्त्विक दृष्टि से प्रकाशजनक होती है।

इस प्रकार कीर्किगार्द के चिन्तन-सार को यदि एक शब्द मे "इसाईयत" कह दिया जाए तो अतिशयोक्ति न होगी।

अस्तित्ववादी गगन मे नीत्शे नामक तारा भी नजरअन्दाज नही किया जा सकता। इन महोदय की समस्या थी कि मे 'नास्तिक के रूप मे कैसे जिये ?' इन्ही के शब्दो मे—"यह बात दरअसल महत्त्वपूर्ण है और इससे ही सारा फर्क पडता है कि क्या एक विचारक अपनी उन समस्याओ के साथ वैयक्तिक सम्बन्ध रखता है जिनसे वह अपना भविष्य, अपनी आवश्यकता और अपनी उच्चतम प्रसन्नता देखना चाहता है, अथवा वह उन्हे केवल अवैयक्तिक रूप से सूक्ष्म निरीक्षणदृष्टि के पजो की पकड़ मे लेकर अनुभव करना चाहता

रहता है।" ऐसा इसलिये नही कि मनुष्य के बारे मे हमारा ज्ञान अपर्याप्त है, अपितु इसलिये कि मनुष्य अपनी सत्ता में निरन्तर एक प्रश्न बना रहता है, और इस प्रश्न का सुनिश्चित आधारयुक्त एव प्रमाणिक एक उत्तर हो ही नही सकता। इस प्रकार अस्तित्ववादी दर्शन का प्रमुख प्रयोजन 'मनुष्य के अस्तित्व की मूलसरचना का विश्लेषण करना तथा उसके मूल स्वतंत्र अस्तित्व का बोध करना है।'

अस्तित्ववाद के अनुसार 'अस्तित्व' व्यक्तिगत अभियान का विषय एवं विचार से परे है। इस अभियान मे व्यक्ति अपनी मूलस्वतत्रता का बोध करता है। मनुष्य, मनुष्य का भविष्य है। मनुष्य का कार्य ही उसका स्वरूप है। अत मनुष्य अपने स्वरूप, अपने सार का निर्धारण अपने 'कार्यों' द्वारा करता है। यही विचार अस्तित्ववाद को मूलत. अन्य दार्शनिकविचारो या सिद्धान्तो से पृथक करता है।

दर्शन, मनोविज्ञान, नाटको तथा उपन्यासो पर समान अधिकार रखने वाले फ्रांसिसी दार्शनिक सार्त्र का जन्म सन् १९०५ मे पेरिस मे हुआ। 'बीइ ग एण्ड नथिङ्गनैस' इमेजिनेशन, दि एक्जिस्टेसियलिज्म एज ह्यूमैनिज्म, दि ट्रांसिन्डेस आव दि ईगो' आदि अनेक दार्शनिक ग्रथो के लेखन के साथ-साथ नो एग्जिट, दि फ्लाइज तथा डर्टी-हैण्ड्स जैसे नाटको के लिये आपने विभिन्न पुरस्कार प्राप्त किये। दि 'एक्जिस्टेसियलिज्म एज ह्यूमैनिज्म' नामक ग्रथ मे इन्होने अस्तित्ववाद पर लगाये गये आरोपो का धमाकेदार खण्डन किया।

"अस्तित्व, सार का पूर्वगामी है" अस्तित्ववाद की इस आधारिक परिभाषा का श्रेय भी आपको ही प्राप्त है। इन्होने बताया कि मनुष्य को कुर्सी, मेज आदि जैसी वस्तुओ का दर्जा देना मूर्खता है। वे पुन कहते है उनकी यह परिभाषा मानवीय वास्तविकता पर ही लागू होती है, वस्तुओ पर नही, क्योकि मानवीय अस्तित्व की समस्याये, सैद्धान्तिक समस्याये नही है। इसी सदर्भ मे वे बताते है कि दर्शन का लक्ष्य सामान्य सिद्धान्तो का प्रतिपादन न होकर, 'मनुष्य होने का क्या अर्थ है' जैसा सार्थक प्रश्न पूछना तथा इसके उत्तर के लिये क्रियाशील होना है।

सार्त्र के अनुसार 'अनुभवातीत आत्मा' का प्रत्यय अनावश्यक एव भ्रमित करने वाला है। ऐसी आत्मा, चेतना को विभक्त कर देती है। 'बीइ ग एण्ड नथिङ्गनैस' मे सार्त्र ने लिखा है -" If it existed, it would tear consciousness from itself, it would divide consciousness." इनके विचार मे आत्मा शुद्धरूप से 'विषयापेक्षी' है। यह चेतना मे नही बल्कि जगत मे निवास करती है। अन्य व्यक्ति की आत्मा की भाँति आत्मा जगत की सत्ता है। यह आत्मा न तो स्वयं विषय (वस्तु) है और न ही विषयरूप मे इसका ज्ञान हो सकता है। इस प्रकार सार्त्र की स्वनिमित्त चेतना

अनुचिन्तनपूर्वी चेतना है। यह चेतना मूलत 'ज्ञाता चेतना' न होकर क्रियाशील तथा अनुभूति कराने वाली चेतना है। यह वस्तुजगत मे ही सक्रिय तथा वस्तुओ के मध्य पायी जाती है। चूँकि यह चेतना 'अवस्तु' है, इसीलिए वस्तुजगत की विविधता की रचना करती है। अर्थात् सत्ता को अर्थ देती है। यहाँ रचना का अर्थ उत्पन्न करना नही है। अवस्तुत्व हमारे अनुभव का विषय है न कि निर्णय का गुण। चेतना की निषेधक्रिया का परिणाम ही 'अवस्तुत्व' है। उल्लेखनीय है कि यही निषेधक्रिया मनुष्यो को अन्य सत्ताओ से पृथक करती है, तथा यही गुण मनुष्य की मूलस्वतत्रता के लिये उत्तरदायी है।

अवस्तुत्व के लक्षण के सदर्भ मे सार्त्र का मानना है कि हमे केवल वस्तुओ का ही नही, अपितु अवस्तुओ का भी प्रत्यक्ष होता है। दूसरे शब्दो मे हम भाव एव अभाव दोनो का प्रत्यक्ष करते है। अर्थात्, असत्ता सत्ता की परवर्ती है' तथा अपने अस्तित्व के लिए सत्ता पर निर्भर करती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं सार्त्र का अवस्तु सम्बन्धी सिद्धान्त मानवीय स्वातन्त्र्य का सिद्धान्त है। यहाँ यह भी स्पष्ट करना समीचीन है कि सार्त्र चेतना, आत्मा या मनुष्य को वस्तु नही कहते जो उचित भी लगता है। यदि इनको वस्तुओ की श्रेणी में रख दिया जाये तो इन्हे भी प्रकृतजगत की घटनाओ की भाँति नियन्त्रित होना चाहिए, लेकिन ऐसा नही होता। मनुष्य को 'A being who is not what he is, who is, what he is not' प्रकार से परिभाषित करते है। अर्थात् "मनुष्य जो है, वह नही है तथा जो नही है, वह है"। इस परिभाषा को इस प्रकार समझा जा सकता है—सत्तावान होने की अवस्था मे मनुष्य (मै) अपने अतीत को, अपने विचार का विषय बनाता है, उसका परीक्षण करता है। दूसरे शब्दो मे—'अपने अतीत के सन्दर्भ मे मनुष्य (मै) विषयो का दृष्टा है तथा अतीत उसका विषय है, अर्थात् वह अतीत का अतिक्रमण करते हुए "मैं नही" के रूप मे स्थापना करता है। अपना अतीत होते हुए भी मनुष्य (मै) अपना अतीत नही होता।

इसी प्रकार मनुष्य अपना भविष्य है भी और नही भी है। वह अपना भविष्य है क्योकि वह उसका अपना है, उसके द्वारा निर्मित है। किन्तु 'होने के प्रकार' के रूप मे वह अपना भविष्य नहीं, क्योकि उसे अभी 'होना है'। अत मनुष्य अपना 'अतीत एव भविष्य' 'है भी' और 'नही भी'। उसके 'वर्तमान तथा अतीत' तथा 'वर्तमान तथा भविष्य' के बीच 'कुछ भी नही' (Nothing) खडा है।

सार्त्र का दर्शन बताता है कि "मनुष्य को स्वतत्र होना चाहिए"। यहाँ यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि सार्त्र 'स्वतत्रता' को 'मानवीय वास्तविकता' का पर्यायवाची मानते हुए कहते है—"मनुष्य पूर्णतया तथा नित्य स्वतत्र है। मनुष्य अथवा चेतना "अवस्तुत्व है, सत्ता का अभाव है, सत्ता में छिद्र है।" अर्थात् सार्त्र-दर्शनानुसार मनुष्य का कोई 'सार-तत्त्व' नही होता, वह अपना निर्माणकर्त्ता स्वय है। चूँकि वह अपने मूल्यो की स्वय

रचना करता है, अतः यह कहा जा सकता है कि मूल्यो का आविर्भाव मानवीय वास्तविकता के साथ ही होता है।

दूसरी ओर सार्त्र मनुष्य की अपने कार्यों के लिये कारणो के तलाश की प्रवृत्ति को समझाना आवश्यक समझते हैं। इस प्रवृत्ति को वे 'मनुष्य की दुरास्था' कहते हैं। 'दुरास्था' का सहारा लेकर मनुष्य 'उत्तरदायित्व' से उत्पन्न चिन्ता तथा चिन्ताजन्य क्लेश से मुक्ति पाने के लिये छटपटाता है। इस छटपटाहट मे वह बहुत बहाने ढूँढता है। बहानो की इस ढूँढ-खोज को ही सार्त्र 'दुरास्था' (Bad-Faith) की संज्ञा देते है।

सरल शब्दो मे कहा जा सकता है कि मनुष्य द्वारा सही स्थिति को नजर-अन्दाज करते हुये उसके वास्तविक अर्थ को ग्रहण न कर, उसे अन्य रूप मे प्रस्तुत करने के लिये बहानो की तलाश ही 'दुरास्था' है। इस प्रकार की आत्म-प्रवचना को सार्त्र 'आत्म-निहित-झूठ' कहते है —

"Bad-Faith does not come from outside to human reality. One does not undergo his bad faith; one is not injected with it, it is not a state. But consciousness affects itself with bad faith ...... the one to whom the lie is told and the one who lies are one and the same person." [B.N. p-49].

स्वयं सार्त्र 'दुरास्था' शब्द को अधिक स्पष्ट करने के लिये कई दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं। चूँकि 'मनुष्य की दुरास्था' को ही वे 'आत्म-प्रवचना' के लिये उत्तरदायी मानते हैं, अत सार्त्र प्रदत्त निम्न उदाहरण से इसको उचित प्रकार से समझा जा सकता है—

"एक भद्र महिला अपने किसी (मात्र प्रसग से परिचित) पुरुष मित्र के साथ पहली बार सम्पर्क मे आती है। (अधिक विस्तार से न कहते हुये) वह भद्र पुरुष, महिला मे विभिन्न प्रकारेण अपनी रुचि दिखाता है। भद्र महिला, पुरुष की शीघ्र-रुचि, काम-भावना तथा स्वय अन्त मे, पुरुष की काम-भावना को ध्यान मे रखते हुये निर्णय की आवश्यकता को शत-प्रतिशत समझते हुए भी, ऐसा प्रदर्शित कर रही है कि वह पुरुष के कामुक व्यवहार से अपरिचित है तथा उसकी बातो का मात्र (अभिधार्थ) सत् अर्थ ही जान रही है। अपनी सहमति या असहमति इसलिए नही देती है कि वह यह नही जानती कि स्वय वह क्या चाहती है। हाँ, वह अपनी कामोत्तेजक मन स्थिति को जानती है लेकिन उसके नग्नरूप को स्वीकार करने से घबराती है। क्या उक्त महिला 'दुरास्थाग्रस्त' नही है ?"

कहने का तात्पर्य यह कि सार्त्र की सम्मति मे 'ईश्वर का प्रत्यय' विषयगत (subjective) नही है। प्रयत्न करने पर भी न वह जाना जा सकता है न ही ग्रहण किया

जा सकता है, अतः 'ईश्वर मृत' है। यदि वह होता तो अस्तित्ववान होता, क्योंकि प्रत्येक 'सत्य' अस्तित्वों से बँधे रहते हैं। अतः 'अस्तित्वों' को नकार कर 'सार समूहो' पर ध्यान देना, अपने आप को धोखा देने के अतिरिक्त कुछ भी नही है।

साराशरूप में कहा जा सकता है कि अस्तित्ववाद, मनुष्य को उसके वास्तविक अस्तित्व तथा अस्तित्वगत प्रश्नों के सामने खड़ा करने का ही नाम है। विज्ञानवाद पर आरोप लगाते हुए सार्त्र कहते हैं कि इसमे तो मनुष्य के वास्तविक जीवन की समस्याओ को नकार दिया गया है। विज्ञानवाद, मृत्यु को मनुष्य-जीवन की समस्या ही नही मानता। क्योकि इसकी (विज्ञानवाद) दृष्टि मे 'आत्मा, मृत्यु से परे है'। सार्त्र के कथनानुसार, तत्त्वमीमासीय उदात्त सिद्धान्त, मनुष्य के वास्तविक जीवन से मृत्यु-जन्म भय तथा अन्य चिन्ताओ को मिटाने में पूर्णत असफल हैं। मृत्यु मानवीय अस्तित्व की अपरिहार्य नियति है। मृत्यु को मात्र 'मिथ्या' कह देने से उससे छुटकारा नही मिल जाता।

सार्त्र के अनुसार मनुष्य को अनेक वस्तुओ के बीच एक वस्तु के रूप में देखना बहुत बड़ी भूल है। क्योकि ऐसा करने से मेज, कुर्सी आदि भौतिक पदार्थों की तरह वह भी अपनी सत्ता मे सीमित हो जायेगा। जिसका परिणाम यह होगा कि न तो वह अन्य किसी वस्तु को जान पायेगा और न ही उनके साथ कोई सम्बन्ध स्थापित कर सकेगा। व्यवहार मे हम देखते है कि मनुष्य को अन्य वस्तुओ को जानने का सामर्थ्य प्राप्त है, वह अमुक-अमुक वस्तुओ से अपने सम्बन्ध स्थापित करता रहता है, फिर उसे भौतिक पदार्थों की तरह कैसे समझा जा सकता है? इसका अर्थ यह भी नहीं कि मनुष्य निरपेक्ष सत् या शुद्ध चेतना है, जैसा कि विज्ञानवादी मानते है। अस्तित्ववादी तो वास्तविक मानव-अस्तित्व पर बल देता है, अर्थात् जगत् स्थित मानव - अस्तित्व को ही यथार्थ समझता है। मनुष्य का जगत से सम्बन्ध, 'सत्ता का सम्बन्ध' है, जिसमे विषयी' अपना शरीर है, अपना जगत् है, अपनी परिस्थिति है। इसी बात को पोटी सेन्स और नॉनसेन्स नामक अपनी पुस्तक मे इस प्रकार से लिखते है

"The relationship between subject and object is no longer that relationship of knowing postulated by classical idealism.........but a relationship of being, in which paradoxi-cally, the subject is his body, his world and his situation by a sort of exchange."

"सार अस्तित्व का पूर्वगामी है' जैसी विज्ञानवादी मान्यता सार्त्र की सम्मति मे भौतिक पदार्थों जैसे कुर्सी, मेज आदि पर ही लागू हो सकती है। कुर्सी का निर्माण बढ़ई करता है। इसकी प्रेरणा उसे कुर्सी के प्रत्यय से मिलती है। उस प्रत्यय को वह

अपने निर्माणकौशल द्वारा वस्तु (कुर्सी) का रूप प्रदान करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि कुर्सी का 'अस्तित्व' उसके 'सार' द्वारा निर्धारित होता है। यह बात सभी भौतिक पदार्थों पर समान रूप से लागू होती है लेकिन मनुष्य पर नहीं, क्योंकि मनुष्य के संदर्भ मे तो 'अस्तित्व ही सार का पूर्वगामी होता है।' प्रसिद्ध शायर गालिब के शब्दो में —

" ऐ खुदा ! हम हैं,
इसीलिये तेरे होने का भ्रम होता है।
नही होते, तो तेरी हस्ती को कौन पूछता।"

उपरोक्त विचारधारा के कारण ही अस्तित्ववाद, आधुनिक समय में जहाँ लोकप्रिय होता जा रहा है वही वह आरोपो के बधनों मे छटपटाहट लिये हुए है। सार्त्र की प्रमुख कृति 'Being And Nothingness' को जहर कहकर उसको न पढने की चेतावनी देने मे कैथोलिक चर्च ने बिल्कुल देर न लगाई। अस्तित्ववाद को Logical Positivism से भी अधिक खतरनाक बताया गया, क्योकि इसमे सृष्टि-कर्त्ता के रूप मे ईश्वर को निराधार बताया गया है। ईश्वर को निराधार बताने के अपने दावे के पक्ष मे अस्तित्ववादी कहते हैं यदि ईश्वर पूर्ण स्वतन्त्र है तथा नित्य है तो वह परतत्र एव अनित्य मनुष्य की रचना क्यो करता ? और यदि तथाकथित ईश्वर की सृष्टि आतरिकरूप से ईश्वर पर निर्भर करती है, तो ईश्वर को पूर्ण एव एक पृथक सत्ता के रूप मे कैसे स्वीकार किया जा सकता है ? अत, या तो मनुष्य, ईश्वर-परतत्र है (स्वतत्र नही है) या स्वतत्र है। स्वतत्र मानने पर उसको ईश्वर की आवश्यकता क्यो ?

ठीक से देखने पर पता चलता है कि 'मनुष्य की स्वतत्रता' ही सार्त्र-दर्शन का मुख्यबिन्दु एव आधार है। वह मनुष्य की सत्ता तथा स्वतत्रता को पर्यायवाची मानता है। लाइबनित्स के 'पूर्वस्थापित सामजस्य' (Pre-established-harmony) जिसके अनुसार, मनुष्य का सारतत्त्व ईश्वर द्वारा निर्धारित होना बताया गया है, की आलोचना करते हुए सार्त्र कहते हैं कि यदि मनुष्य के जीवन की सामान्य रूपरेखा पूर्वनिर्धारित है तो उस निर्धारण के बीच 'मनुष्य के स्वतत्र आचरण' की बात करना तर्कहीन ही नही, अर्थहीन भी है। परतत्रता मे स्वतत्रता की कल्पना खोखली है। यही कारण है कि 'मनुष्य की स्वतत्रता' के लिये, सार्त्र ने 'ईश्वर' को मृत घोषित कर दिया।

इस प्रकार विभिन्न असगतियो के बावजूद भी अस्तित्ववाद को 'निष्क्रियता का दर्शन' नही कहा जा सकता। इसके अनुसार तो 'कर्मों के अतिरिक्त कोई वास्तविकता ही नही है'। मनुष्य अपनी योजनाओ के अतिरिक्त कुछ भी नही है। अपनी असफलताओं के लिये बहाने ढूँढने वाले लोग ही अस्तित्ववाद की आलोचना करते हैं। एक निरर्थक

वासना के रूप में, ईश्वर के उत्पन्न या पैदा होने के लिये, अपने अस्तित्व को मिटा देते हैं।

सन्दर्भ सूची :

1. बीइंग एण्ड नथिङ्गनैस — सार्त्र
2. एक्जिस्टेंसियलिज्म एज ह्यूमनिज्म — सार्त्र
3. एक्जिस्टेंसियलिज्म एण्ड ह्यूमन इमोशन्स–विस्डम लाइब्रेरी
4. समकालीन पाश्चात्य दर्शन – लक्ष्मी सक्सेना
5. दर्शन के सौ वर्ष — जॉन पासमोर
6. अस्तित्ववाद पर अपने नोट्स।

हिमालय के स्तनपोषी जन्तु

—डा० बी०डी० जोशी

अध्यक्ष, जन्तुविज्ञान विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

भारतवर्ष की सम्पूर्ण उत्तरी सीमा को अंकित करने वाला, संसार के सब पर्वतों का स्वामी हिमालय हमारे लिए प्रकृति की ओर से अनुपम उपहार है। हिमालय का वनस्पति तथा जन्तुजगत वहाँ के निवासियों का, वहाँ भ्रमण के लिए आने-जाने वाले यात्रियों का तथा वैज्ञानिकों का चित्त सदा से ही आकर्षित करता रहा है। समय-समय पर बड़े-बड़े साहसी व्यक्ति हिमालय पर पशु-पक्षी और विविध प्रकार की वनस्पतियों की खोज के लिए जाते रहे हैं। हिमालय के जन्तु और पौधे, वैज्ञानिक तथा आर्थिक दृष्टि से हमारे लिए एक अत्यन्त गौरव की वस्तु तथा एक महत्वपूर्ण धन है। आधुनिक जन्तु-विज्ञान के अनुसार हिमालय के कुछ मुख्य स्तनपोषी जन्तुओं (मैमल्स) का संक्षिप्त परिचय देना इस लेख का मुख्य उद्देश्य है।

जन्तु और वनस्पति जीवन में एक बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। किसी स्थान के जन्तुओं को समझने के लिए वहाँ की वनस्पतियों का ज्ञान होना भी आवश्यक है। अतः अच्छा हो कि जन्तुओं का परिचय देने से पहले हम हिमालय के वनस्पतिवितरण का संक्षिप्त दिग्दर्शन करते जायें।

बढ़ती हुई ऊँचाई और बदलती हुए जलवायु के साथ वनस्पति और जन्तुओं दोनों ही में अनेक प्रकार की विविधता और विभिन्नता आती-जाती रहती है। हिमालय के पूर्व में ६५०० फीट तथा पश्चिम में ५००० फीट की ऊँचाई तक सघन वनों का ऊष्ण कटिबन्धीय भाग है जिसमें तरह-तरह के आर्किड्स तथा लगभग ३५० जातियों के स्थलीय और अन्य पौधों के ऊपर उगने वाले पौधे उपस्थित हैं। यहाँ के आगे लगभग १२००० फीट की ऊँचाई तक शीतोष्ण भाग है जिसमें ओक (बाज), चीड और बुरूश (रोडोडेन्ड्रान) हैं, तथा पूर्वी भाग में पागर (चेसनट), मेपल, मैग्नेलिया और लौरल आदि के विभिन्न भेद उपस्थित है। कुल्लू तथा कुमायूं जैसे स्थानों में, जहाँ वर्षा बहुत अधिक नहीं है, सेव, खुमानी, अखरोट, नारंगी तथा नाशपाती जैसे फल भी बहुत होते है। १२००० फीट से ऊपर वनों की सघनता कम होने लगती है। कुछ ऊँचाई तक भोजपत्र तथा विलो नामक वृक्ष और छोटी रोडोडेन्ड्रान दृष्टिगोचर होते है। किन्तु

आगे खुले चरागाह हैं जिनमे कि ग्रीष्मऋतु मे विभिन्न प्रकार के चमकीले पुष्प शोभायमान होते हैं। इन चरागाहों को बुग्याल कहते है। हिमालय के पूर्वी भाग मे वनस्पति अधिक घनी है, अपेक्षाकृत पश्चिमी भाग के। १५००० से १६००० फीट की ऊँचाई से स्थिर हिम की रेखा है।

जलवायु तथा वनस्पति जीवन के इस प्रारम्भिक वर्णन के पश्चात् हिमालय के कुछ मनोरजक और महत्वपूर्ण स्तनपोषी जन्तुओ का संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है :

लंगूर :

लगूर की दो जातियाँ हिमालय मे देखने को मिलती हैं। एक है सेम्नोपिथेकस ऐन्टेलस और दूसरी है सेम्नोपिथेकस शिस्टेशियस। पहली जाति हिमालय के नीचे अर्थात् आधार वाले स्थानो पर है और दूसरी काश्मीर से भूटान तक हिमालय के अधिकाश भाग मे ६००० से १२००० फीट की ऊँचाई तक मिल सकती है। से० शिस्टेशियस का आकार ऐन्टेलस से अधिक बडा होता है, तथा उसके कान ऐन्टेलस के कानो से छोटे होते है। दोनो ही शुद्ध शाकाहारी जन्तु हैं। साधारण बन्दरो की अपेक्षा वे बहुत अधिक नाजुक होते है जिसके कारण मनुष्य के द्वारा उनका पाला जाना कठिन है। बन्दरो की तरह ये जन्तु भी समूहो मे रहते है। लगूर बहुत ही चुस्त प्राणी है और ठीक अनुमान के साथ एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष तक लगभग ४० फीट तक की कूदान ले सकता है। लगूरो की आवाज प्राय: बहुत अधिक ऊँची होती है, और वह प्रात काल और सायकाल सुनाई देती है। यद्यपि हिन्दुओ के द्वारा लगूर पूज्य जन्तु है, किन्तु मनुष्य के निवासस्थानो के पास आकर यह जब तरह-तरह के उत्पात मचाते हैं तो हानिकर सिद्ध होते है, क्योंकि बन्दरो की तरह यह भी खाने-पीने की तथा अन्य उपयोगी वस्तुओ को लेकर भाग जाता है।

बिल्ली वंश (फेलिडो) के जन्तु—

जैसे कि बाघ या शेर, तेन्दुआ या चीता, हिम तेन्दुआ, क्लाउडैड तेन्दुआ, मार्बिल्ड बिल्ली, स्वर्ण बिल्ली, वन विडाल (फिशिंग कैट), चीता बिल्ली, जंगली बिल्ली तथा लिक्स आदि जन्तु हिमालय के विभिन्न स्थानो मे पाये जाते है। ये सब शिकारी, माँसाहारी जन्तु हैं। पैने दाँत, नख, तीव्र गति, बहुत अधिक शारीरिक क्रियाशीलता तथा देखने, सूँघने आदि की विलक्षण शक्तियो ने इन जन्तुओ को इस योग्य बना दिया है कि ये अपने से भी बड़े आकार के जन्तु को खोज सके, पकड़ सके और उसको मारकर अपना भोजन प्राप्त कर सकें।

बाघ या शेर हिमालय के नीचे वाले वनो में पाये जाते हैं। वे ६००० या ७००० फीट की ऊंचाई तक भी जा सकते हैं, किन्तु हिमालय के भीतरी भागो मे शेर नही है।

शेर मनुष्य के लिए हानिकारक हैं और लाभदायक भी। वे हमारे घरेलू जानवरों को पकड कर ले जाते हैं। साधारणत वे मनुष्य से बहुत डरते हैं किन्तु विशेष परिस्थितियों मे पडकर शेर आदमखोर भी बन सकता है। ऐसे समय तो वह एक आतंक का कारण बन जाता है और उसको मारने के अनेक उपाय किये जाते है। शेर की खाल, उसके दाँत तथा नख आदि घरो की सजावट तथा अनेक प्रकार के जादू-टोने आदि के काम आते हैं।

तेंदुआ या चीता चित्तीदार हिंसक जन्तु है जिसके रग तथा आकार के आधार पर कितने ही भेद हैं। हिमालय के नम जगलो मे पाये जाने वाले तेदुए का रग गहरा और अधिक लाल होता है तथा चित्तियाँ अधिक बडी होती हैं। तेदुआ शेर की अपेक्षा अधिक निडर है। वह मनुष्यो के निवासस्थानो के पास आकर रात के समय कुत्ते, भेड, बकरी आदि पालतू पशुओ को पकड कर ले जाता है। शेर की तरह तेदुआ भी मानव-भक्षी बन सकता है और तब वह मनुष्य के लिए बहुत हानिकारक सिद्ध होता है।

हिम तेदुआ हिमालय के ऊँचे स्थानो पर, विशेषरूप से तिब्बत की ओर सिंध और सतलज नदियो की ऊपर वाली घाटियो मे पाया जाता है। ग्रीष्म ऋतु मे ६००० फीट से नीचे इसको कभी नही देखा गया किन्तु शीत ऋतु मे ६००० फीट नीचे तक भी आ सकता है। आकार साधारण तेंदुए जैसा ही, अर्थात लगभग सिर से पूँछ तक ६ या ८ फीट लम्बा और २ फीट ऊँचा है। त्वचा ऊनी, लम्बे, घने बालो वाली है। पीठ का रंग पृथ्वी के रग के जैसा अर्थात बहुत अधिक पीला, सफेद, भूरा तथा उदर का रग सफेद है। सारे शरीर पर काली चित्तियाँ है जो कि साधारण तेदुए की चित्तियो से बडी अर्थात जिनका व्यास २ इच से अधिक है। भेड, बकरी, कुत्ते आदि इस जन्तु के भोजन हैं, अत यह पहाडी गाँववालो के लिए हानिकर है किन्तु आज तक यह कभी नही सुना गया कि इसने कभी किसी मनुष्य पर आक्रमण किया हो।

क्लाउडेड तेंदुआ, दक्षिण-पूर्वी हिमालय मे लगभग ६००० फीट की ऊँचाई तक मिलता है। आकार मे साधारण तेदुए से कुछ छोटा, किन्तु लम्बाई ५ फीट से अधिक होती है। त्वचा का रग पिगल भूरा या पीला गेहुँआ है जिसके ऊपर अनियमित आकृति की बहुत बडी-बडी (व्यास २ इच से अधिक, काली चित्तियो की पट्टियाँ बिखरी हुई होती है। यह अधिक समय वृक्षो पर व्यतीत करता है।

मार्बिल्ड बिल्ली हिमालय के पूर्वी भाग मे पाई जाती है। घरेलू बिल्ली से कुछ बडी किन्तु लम्बाई ५ फीट से अधिक नही होती। रग तथा चित्तियो आदि मे कुछ-कुछ क्लाउडेड तेंदुए के ही सदृश है। इसके स्वभाव आदि के विषय मे बहुत कुछ तो ज्ञात नही है सिवाय इसके कि यह सम्भवत. वृक्ष पर रहने वाला भयकर किन्तु शर्मीला जन्तु है।

स्वर्ण बिल्ली दक्षिण-पूर्वी हिमालय की साधारण ऊँचाई पर मिलती है। आकार मे मार्बिल्ड बिल्ली से बड़ी तथा क्लाउडेड तेदुए से छोटी होती है। त्वचा तथा पीठ पर लाल पिंगल किन्तु उदर सफेद है।

बन विडाल हिमालय के बहुत नीचे वाले भागो मे पाया जाता है। लम्बाई लगभग साढे तीन फीट और ऊँचाई लगभग १५ इच होती है। पीठ पर रग पिंगल भूरा किन्तु पार्श्वों मे तथा उदर पर हल्का पीला और सफेद होता जाता है। काले या गहरे पिंगल रग की अनियमित चित्तियाँ उपस्थित होती है जिनमे से अधिकाँश कम लम्बी और चौडी अधिक होती है। बन विडाल घने दलदली जगलो मे नदियो के समीप रहते हैं। अपने वग के सब जन्तुओ से इसमे एक विशेषता यह है कि मछलियाँ इसका प्रिय भोजन हैं और इसलिए इसको "फिशिग कैट" भी कहते है।

चीता बिल्ला, हिमालय मे सब स्थानो पर और पश्चिम मे विशेषरूप से शिमला तक खूब पाया जाता है। और घरेलू बिल्ली के जैसा है या उससे भी कुछ छोटा है, किन्तु टाँगे अधिक लम्बी है। इसके रग मे बहुत अधिक विभिन्नताएँ पाई जाती है और इसलिए इसके कई भेद और उपभेद किये गये है। हिमालय मे पाये जाने वालो का रग पीठ और पार्श्वों पर पीला, लाल, पिंगल होता है। चित्तियाँ कोणदार पर अधिकाशत त्रिकोणदार होती है, जिनके शिखर पीछे की ओर को सकेत करते है। प्रत्येक चित्ती का अगला भाग पिंगल और पिछला भाग काला होता है। पक्षी तथा छोटे चौपाये इस बिल्ली के प्रिय भोजन है।

जगली बिलाव सारे भारतवर्ष मे पाया जाने वाला साधारण जगली जन्तु है। हिमालय पर यह लगभग ६००० या ८००० फीट ऊँचाई तक मिल सकता है। आकार साधारण घरेलू बिल्ली से कुछ बडा है। सिर से पूँछ तक लम्बाई तीन फीट और ऊँचाई लगभग १६ इच तक हो सकती है। अधिक ऊँचाई पर रहने वाली बिल्लियो के बाल लम्बे तथा मैदानो मे रहने वाली बिल्लियो के बाल छोटे होते चले जाते है। इससे स्पष्ट है कि बाल शीत के प्रति रक्षा के साधन है। पीठ पर रग गहरा रेतीला भूरा, पीला भूरा या भूरा पिंगल किन्तु उदर पर हल्का सफेद होता जाता है। छोटे पक्षी और छोटे स्तनपोषी जन्तु इसके भोजन है। गाँवो मे घरो के पास आकर यह बिल्ली, पालतू तीतर, मुर्गियो, मोर, खरगोश आदि जन्तुओ का भक्षण करके मनुष्य को हानि पहुँचाते है।

लिक्स सिंध नदी की ऊपर वाली घाटी मे, गिलगिट, लद्दाख और तिब्बत मे तथा हिमालय के उत्तर वाले एशिया और एल्पास के ऊपर वाले यूरोप के भागो मे पाया जाता है। गिलगिट मे ५००० फीट की ऊँचाई पर तथा तिब्बत मे १४००० या १५००० फीट तक भी इसको प्राप्त किया गया है। यह एक बडी दृढ शरीर वाली बिल्ली है जिसकी टाँगे लम्बी और पूँछ छोटी होती है। सिर से पूँछ तक की लम्बाई लगभग ४० इच हो

सकती है। पूँछ लगभग ८ इंच लम्बी है। भार लगभग ६० पाउंड है। कपोलों के पिछले भाग के बाल लम्बे हैं और पीछे को लटकते है। पीठ पर रग पीला; रेतीला भूरा या कुछ-कुछ लाल हो सकता है। नीचे वाले भाग सफेद हैं। तिब्बत का लिंक्स खुले मे तथा यूरोप का लिंक्स घने जगलो मे रहता है जिसके कारण तिब्बत वाले लिंक्स का रग कुछ अधिक पीला होता है। पैर की उंगलियो पर बाल भी कुछ अधिक छोटे होते हैं। लिंक्स हिंसक जन्तु है। शिकार करने मे यह बहुत सुविधा से पेड़ो पर चढ सकता है।

सिवेट बिल्लियाँ :

वाइवेरिडी वश के इन जन्तुओ के चेहरे और शरीर साधारण बिल्लियो की अपेक्षा कुछ लम्बे किन्तु टाँगे, पैर, भुजाएँ छोटी होती है। सिवेट बिल्लियो के शरीर से सिवेट नामक सुगन्धित पदार्थ निकलता है जो कि अपनी आकर्षक सुगन्ध के लिए ही प्रयोग मे आता है। यह पदार्थ नर और मादा दोनो मे मूत्रद्वार के पास स्थित एक लम्बी झिर्री जैसे छिद्र से बाहर निकलता है। गुदा के पास एक दूसरा दुर्गन्धित पदार्थ भी निकलता है। सिवेट बिल्लियो की चार जातियाँ हिमालय मे पायी जाती है।

साधारण भारतीय सिवेट सिर से पूँछ के अन्त तक ५० इच लम्बी होती है। पूँछ १८ इच है। रग कुछ पिंगल है और पार्श्वों मे काले रग की अस्पष्ट पटिटयाँ हो सकती है। यह जन्तु सिक्किम, नेपाल और हिमालय पर भी पर्याप्त ऊँचाई तक पाया जाता है। स्वभाव अकेले रहने का है। दिन मे झाडियो या छोटी घास मे छिपा रहता है, रात को भोजन के लिए निकलता है। मुर्गी, बत्तख, साँप, मेढक, छोटे स्तनधारी जन्तु, अण्डे, फल और जडे सब इसके भोजन है।

एक दूसरी प्रकार की अर्थात चित्तीदार टाइगर सिवेट दक्षिण-पूर्वी हिमालय मे पायी जाती है। पीठ का रग पीला पिंगल और काली चित्तियो से चित्रित है। उदर का रग सफेद और चित्ती रहित है। पूँछ से आगे शरीर की लम्बाई लगभग १५ इन्च, पूँछ लगभग १३ इन्च और ऊँचाई लगभग ५ इन्च है। यह बहुत सुन्दर और छोटा जन्तु है जो कि जमीन व वृक्ष दोनो पर सुविधा से रह सकता है। छोटे पक्षी इसका भोजन हैं।

तीसरी प्रकार की जाति हिमालय की पाम सिवेट है, जो कि सारे हिमालय पर लगभग ६५०० फीट ऊँचाई तक मिलती है। पूँछ के आगे शरीर की लम्बाई २५ इन्च के लगभग है। पूँछ की लम्बाई भी इतनी ही होगी। पीठ का रग सारे मे भूरा चित्ती या पट्टीरहित तथा उदर का रग हल्का पीला या सफेद होता है। फल, शाक, पक्षी और छोटे स्तनधारी जन्तु इसके भोजन है। वृक्षो के छिद्र इसके निवासस्थान है, अत यह जन्तु अधिकतर वृक्षो पर जीवन व्यतीत करता है।

नेवले :

इन जन्तुओ से हम सब भली-भाँति परिचित हैं। ये स्थलचर जन्तु हैं जो कि वृक्षो पर बहुत कम चढते हैं। पक्षी, छिपकलियाँ, साँप, छोटे स्तनधारी जन्तु, कीडे, मडे और फल इनके भोजन हैं। साँपो के तो ये कट्टर शत्रु हैं। ये जमीन के भीतर अथवा खोखले वृक्षो मे बने बिलो मे रहते हैं। किसी प्रकार से भी उत्तेजित होने पर इनके सारे शरीर के और विशेष रूप से पूँछ के बाल खडे हो जाते है। न्योलों की तीन मुख्य जातियाँ हिमालय मे मिलती हैं।

"छोटा भारतीय न्योला (नेवला)" सिक्किम से काश्मीर तक हिमालय के नीचे वाले भागो मे मिलता है। अधिक विस्तार से फैली हुई जाति इससे कुछ बडी है और उसे "साधारण भारतीय नेवला" कहते हैं। चूहे तथा साँपो के प्रति घर को रक्षित रखने के लिए ये न्योले एक बहुत उपयोगी जन्तु है। एक तीसरी जाति 'केकडे खाने वाला न्योला" है। शरीर का आकार साधारण न्योले के आकार से कुछ बडा है। यद्यपि पूँछ अपेक्षाकृत छोटी होती है। केकडे और मेढक इसके प्रिय भोजन है। तीनो प्रकार की जातियाँ हिमालय के केवल नीचे वाले भागो मे ही मिलती है।

भेडिये, गीदड, कुत्ते और लोमडियाँ (फैमिली—कैनाइडी) ये सब अधिकतर मासाहारी और शिकारी जन्तु है। इनमे से कुछ कीडे और फल तथा सडे माँस को भी खाते है। इन सब मे सूँघने, देखने और सुनने की बडी तीक्ष्ण शक्ति होती है।

भेडिया हिमालय के उत्तर मे स्थित भागो मे मिलता है। तिब्बत और लद्दाख मे पाया जाने वाला भेडिया कुछ पीले रग का होता है। पक्षी और स्तनधारी जन्तु भेडियो के भोजन हैं। वे भेड, बकरी और मनुष्यो के बच्चो को उठाकर ले जाते हैं। कभी-कभी बहुत से भेडिये मिलकर घोडे तथा अन्य बडे पशुओ पर भी आक्रमण कर देते है। आवश्यकता पड़ने पर भेडिये सडा माँस और शाक आदि भी खा लेते हैं।

गीदड घने जंगल या खुले स्थानों मे मैदानो और पहाडो मे घने बसे शहरो मे भारतवर्ष मे हर स्थान पर पाया जाता है। हिमालय पर लगभग ५००० फीट की ऊँचाई तक मिलता है। पशु-पक्षी, सडा-गला माँस, फल विशेषरूप से बेर, गन्ना और मक्का गीदड के भोजन है। गीदड जैसा कि हम सब जानते हैं निशाचर जन्तु हैं जो कि दिन मे कही छिपे रहते हैं और रात्रि के समय भोजन-भक्षण आदि का अपना क्रियाशील जीवन प्रारम्भ करते हैं। गीदड शहरो और कस्बो की सफाई करने के लिए एक अच्छा मेहतर है क्योकि यह जन्तुओ के मृत शरीरो को तथा सड़े-गले माँस आदि को उठाकर ले जाता है।

जंगली कुत्ता काश्मीर से आसाम तक हिमालय के सब जगलो में पाया जाता है। गिलगिट, लद्दाख, सिंध की ऊपरी घाटी तथा पूर्वी तिब्बत मे भी यह मिलता है। आकृति गीदड जैसी है। हिमालय और तिब्बत के जगली कुत्तो के बाल लम्बे होते है। लम्बे बालो के नीचे ऊनी रोवाँ होता है। पूँछ ब्रुश जैसी है। पीठ का रंग मैला लाल या पिंगल भूरा तथा उदर की ओर रग पीला होता है। शरीर लगभग तीन फीट लम्बा तथा बालोसहित पूँछ लगभग सवा फुट लम्बी हो सकती है। विभिन्न प्रकार के मृग और हिरण इनके सर्वप्रिय भोजन हैं। ६ से १२ और कभी २० तक के समूहो मे मिलकर ये हिरणो और मृगो पर आक्रमण करते है। मनुष्य के द्वारा इन कुत्तो का पाला जाना अत्यन्त कठिन कार्य है।

लोमडियाँ यद्यपि कैनाइडी वश के जन्तु हैं, किन्तु फिर भी भेडियों और गीदडों से इनमे बहुत स्पष्ट भेद मिलते है। इनकी पूँछ और शरीर अधिक लम्बी तथा भुजाएँ और टाँगे छोटी होती है। पूँछ शेष शरीर की आधी लम्बाई से अधिक होती है और उसमे ऊपर लम्बे बाल होते हैं। कान बहुत बडे है। लोमडियाँ निशाचर जन्तु हैं। दिन मे बिलो या खाइयो तथा लम्बी घास या झाडियो मे छिपे रहते हैं। ये एकाकी जन्तु हैं। कीडे और फल इनके प्रिय भोजन हैं। लोमडियो की बुद्धि, चतुरता और चालाकी प्रसिद्ध ही है। हिमालय मे पाये जाने वाली मुख्य जाति "वलपेस एलोपेक्स" है जो कि ५००० फीट से अधिक ऊँचाई पर मिलती है। इसकी पीठ के बीच वाले भाग का रग सफेद और पीली चित्तियो से युक्त लाल पिंगल या कुछ मे गहरा लोहे जैसा भूरा होता है। कधो पर पट्टियाँ स्पष्ट या कुछ अस्पष्ट उपस्थित हो सकती हैं। जिन पर मैले पीले से रग की चित्तियाँ स्पष्ट है। पीठ के पीछे वाले भाग का रग सफेद चित्तियो से युक्त भूरा होता है। पार्श्व पीले है। उदर पर क्रीमी सफेद से काले रग तक की चित्तियाँ मिलती हैं। शीत की अपेक्षा गर्मी मे रग अधिक पीला हो जाता है। बसन्त ऋतु मे जब जाड़े वाले बाल झड जाते हैं तो जन्तु को पहचानना बहुत कठिन हो जाता है। नीचे से बचे बालो का रग पीठ पर भूरा पिंगल से काला तक हो सकता है। पार्श्व पीला तथा उदर सफेद दिखलाई देने लगता है। पूँछ को छोडकर शेष शरीर की लम्बाई २ फीट के लगभग होगी। बालो सहित पूँछ १८ या २० इन्च की होती है। अधिक ऊँचाई पर रहने वाली लोमडियो का रग अधिक पीला होता है। और छोटे-छोटे जन्तु, जैसे कि खरगोश, मुर्गी, बटेर, और अन्य छोटे पक्षी इसके भोजन है। अत यह मनुष्य के लिए बहुत हानिकारक है। कीड़े, शहद के छत्ते, फल तथा अड़े आदि भी ये लोमडियाँ खा लेती हैं।

चितराल वंश के जन्तु (मारटेन्स) पालतू बिल्ली के आकार के जन्तु हैं जो कि अपना अधिकाँश जीवन वृक्षो पर व्यतीत करते है। इनकी दो मुख्य जातियाँ हिमालय मे पाई जाती हैं। एक जाति मुस्टेला फ्लेविगुला है जो कि काश्मीर से आसाम तक सारे हिमालय मे ८००० फीट की ऊँचाई तक ही मिलती है इससे ऊपर नही। कुमाऊँ और गढवाल मे इस जन्तु को चितराल कहते हैं। इसकी पूँछ लम्बी और घने बालो वाली है। शरीर का रग

अधिकांश रूप से पिंगल है। कहीं पर पीला पिंगल और कहीं पर काला पिंगल। पक्षी, अंडे, छोटे स्तनधारी जन्तु, छिपकलियाँ, साँप, कीड़े और फल इसके भोजन हैं। दूसरी जाति "मुस्टेला फोइना" है जो कि लगभग सारे हिमालय मे पायी जाती है। इसकी पूँछ पहले की अपेक्षा कुछ छोटी होती है। रंग भूरा पिंगल से काले पिंगल तक हो सकता है। यह गाँवो के आस-पास आकर गाँववालो की मुर्गियो को खा जाता है।

मुस्टेलिडी वश के दूसरे मुख्य जन्तु "वीसेल्स" है जिसकी चार या पाँच जातियाँ हिमालय पर ३००० से १३००० फीट तक भी ऊँचाई पर पाई जाती है। ये बहुत मांसाहारी जन्तु है जो अपने से कई गुने बड़े जन्तु को मार सकते है। पूँछ को छोड़कर शरीर का आकार लगभग एक या सवा फीट लम्बा होता है। टाँगे और भुजाएँ छोटी है और शरीर की आकृति कृमि जैसी प्रतीत होती है। रग मे लाल पिंगल और पीले की आभाएँ मिलती है।

मुस्टेलिडी वश का एक जन्तु पिंगल फेरेट बेजर है जो हिमालय पर नेपाल और सिक्किम मे पाया जाता है। पूँछ लगभग ६ इन्च लम्बी और शेष सारा शरीर लगभग १६ इन्च लम्बा है। लम्बी टाँगे और भुजाएँ छोटी होती हैं। यह जन्तु जगलो मे रहता है और रात मे भोजन के लिए निकलता है।

बिज्जू :

यह जन्तु जो कि कब्र खोदकर अपने भोजन के लिए मृत शरीरो को निकालने के लिए प्रसिद्ध है, हिमालय के केवल नीचे वाले भागो मे रहता है। शरीर ३२ इन्च, पूंछ ५ इन्च तथा रग पीठ पर सफेद, पार्श्वों, टाँगो और भुजाओ पर काला है। पृथ्वी के नीचे बिल या वृक्ष इसके स्थान हैं। जन्तु निशाचर प्रवृत्ति का है और रात को ही अपने भोजन के लिए निकलता है। चूहे, पक्षी, मेढ़क, कीड़े, मुर्गी, फल, जड, शहद और शहद की मक्खी सब इसके भोजन हैं, अत. यह मनुष्य के लिए बहुत हानिकर है।

ऊदबिलाव :

नदी या पानी के अन्य स्थानो के पास सुरगे बनाकर रहने वाले इस लगभग बिल्ली के आकार के जन्तु की कई जातियाँ हिमालय मे पाई जाती है। पैर छोटे, दृढ, गोल और उगलियो के बीच तैरने के लिए झिल्ली फैली रहती है। पूंछ लम्बी, चपटी और मोटी है। मछलियाँ, मेढक, केकडे आदि इसके भोजन है। भारतवर्ष के कई स्थानो मे ऊदबिलाव को मछेरे इसलिए पालते है कि यह उनकी मछली पकड़ने मे सहायता करता है।

हिमालय का रंकून :

यह जन्तु दक्षिणी-पूर्वी हिमालय मे ६००० फीट से १२००० फीट की ऊँचाई तक पाया जाता है। पूँछ बालो सहित लगभग १६ इन्च और शेष सारे शरीर की लम्बाई २४ इन्च के लगभग है। बाल लम्बे, मोटे और घने होते हैं। पैर और उँगलियाँ बालो से ढकी हैं। पीठ का रग मैला लाल, टाँगे और भुजाएँ काली, पूँछ पर पीली पट्टियाँ, चेहरा सफेद आदि शरीर के साधारण रग है। रंकून वृक्षो पर रहने वाला शाकाहारी जन्तु है।

भालू :

भालू या रीछ की दो जातियाँ हिमालय मे पायी जाती हैं। एक है लाल पिंगल भालू और दूसरा है काला भालू। गर्मी मे ये भालू बहुत अधिक ऊँचाई अर्थात बर्फ के समीप तक चले जाते है, किन्तु शीत ऋतु मे लगभग ५००० फीट से भी नीचे चले जाते हैं। फल, शाक, कीडे शहद तथा भेड़ और बकरी आदि पशु इनके भोजन है और मनुष्य पर आक्रमण कर सकता है।

दुरंगी चूहा :

यह चूहा पूर्वी हिमालय में ४००० फीट से ६००० फीट ऊँचाई तक मिलता है। बाल लम्बे हैं और बालो के बीच-बीच मे चपटे काँटे भी उपस्थित हैं। पूँछ ६ इन्च लम्बी और शेष शरीर की लम्बाई लगभग साढे पाँच इन्च होती है। पीठ का रग पिंगल और नीचे सफेद इसलिए इसको दुरंगी चूहा कहते हैं।

कपिल बांस चूहा :

पूर्वी हिमालय के नीचे वाले भागों मे, विशेषकर नेपाल, सिक्किम, आसाम, मनीपुर और बर्मा मे यह सर्वत्र मिलता है। पूँछ लगभग तीन इंच लम्बी और शेष शरीर लगभग ६ इंच लम्बा होता है। पेडो की जड़ो के नीचे बिल तथा लम्बी घास इसके निवासस्थान हैं। तरह-तरह की घासो और विशेषरूप से अनाज और बाँस की जडे तथा अन्य भाग इसके भोजन है। बर्मा की पहाड़ी जातियाँ इसको भोजन के रूप मे प्रयोग करती हैं।

हाथी :

हाथी से हम सब अच्छी तरह से परिचित है। हाथियो के झुँड हिमालय के नीचे वाले भागो मे घने जगलो में सब स्थानो पर पाये जाते है। यद्यपि गंगा की पहाड़ियों पर

यह ३००० फीट की ऊँचाई तक भी चढ जाता है, किन्तु हिमालय की तलहटी तक ही हाथी सीमित हो गए हैं। हाथी बहुत अधिक ऊँचाई पर नही जाते।

गेंडा :

नाक के ऊपर सींग वाला, मोटी खाल का यह भारी-भरकम जन्तु किसी समय सिक्किम की तराई में तथा हिमालय के नीचे नेपाल मे बहुलता से पाया जाता था किन्तु आजकल यह केवल आसाम के मैदानो मे सीमित रह गया है। घनी घास से युक्त कीचड़ वाले स्थान इसको पसन्द है और यह कीचड मे लेटने मे विशेष आनन्द लेता है। यह कभी पहाड़ो पर नही चढता। घास इसका विशेष भोजन है।

गौर या गौरी गाय :

लगभग ५ या ६ फीट ऊँचा और ६ या ८ फीट लम्बा गोवंश का यह पिंगल जन्तु गंगा के मैदानो मे हिमालय के समीप पाया जाता है। पहाडो पर चढने मे भी यह निपुण है। इसका भोजन घास है और कभी-कभी खेती को हानि करते भी सुना गया है। इनको पालने के प्रयत्न अब तक विफल ही होते रहे है।

याक :

गौवंश का यह जन्तु जंगली अवस्था मे गहरे पिंगल रंग का और आकार मे लगभग ६ फीट ऊँचा और ७ फीट लम्बा, तिब्बत मे लगभग १४००० फीट से २०००० तक की ऊँचाई तक मिलता है। भारतीय सीमा मे यह केवल उत्तरी लद्दाख मे उपस्थित है। इसको शीत, जगल और एकाकी स्थान प्रिय है। सारे स्तनधारियो मे यही सबसे अधिक ऊँचाई तक जा सकता है। घास इसका भोजन है, पानी बहुत अधिक पीता है और शीत ऋतु मे बर्फ भी खाता है। लोग इसको दूध के लिए, बोझा ढोने के लिए और मांस के लिए पालते है। पालतू याक आकार मे छोटे और रंग मे विभिन्न होते है। इनकी पूँछ से मक्खियां उड़ाने के लिए चवर बनती हैं।

भेड़ :

भेडो की तीन मुख्य जातियाँ हिमालय के आस-पास मिलती है। सबसे बडी तिब्बती भेड जो कि तिब्बत मे लद्दाख मे लेकर सिक्किम तक १२००० से १५००० फीट की ऊँचाई तक मिलती है। एक दूसरी कुछ छोटी जाति है "उरियल" या "शा" जो कि लद्दाख और उत्तरी-पूर्वी तिब्बत में पायी जाती है। तीसरी जाति है "भरल" जो कि अपने लक्षणो मे बहुत कुछ बकरी के सदृश है। यह तिब्बत और मुख्य हिमालय पर १०,००० से १६००० फीट की ऊँचाई तक मिलती है।

आइबेक्स :

एक प्रकार की जगली पहाड़ी बकरी है जो कि हिमालय पर बहुत अधिक ऊँचाई पर बर्फ के समीप पायी जाती है। शीत ऋतु मे रग पिगल किन्तु ग्रीष्म ऋतु मे कुछ-कुछ हल्का पीला हो जाता है। बकरे की ठोडी मे से घने बालो वाली दाढी नीचे को लटकती है।

तेहर :

यह भी बकरी जैसा ही एक जन्तु है जो कि पीरपंजाल से लेकर सिक्किम तक हिमालय मे सब स्थानो पर ऊँचे जगलो मे पाया जाता है। रग गहरा या लाल पिंगल है और शरीर पर घने लम्बे बाल होते है।

सेरो :

शरीर भारी, सिर और कान बडे, रग काला या गहरा भूरा, आकार पूँछ के अतिरिक्त ४ फीट लम्बा और ३ फीट ऊँचा, पूँछ लगभग ६ इन्च लम्बी, नर और मादा दोनो मे सीग उपस्थित, इस प्रकार ये लक्षणो वाला यह एकाकी जन्तु सारे हिमालय मे ६००० से १२००० फीट तक की ऊँचाई पर मिलता है।

गोरल :

काले सीग, पिगल रंग और बकरी की आकृति वाला यह जन्तु हिमालय मे सबसे अधिक जाना-पहचाना हुआ है। यह काश्मीर से भूटान तक हिमालय मे ३००० फीट से ८००० फीट की ऊँचाई तक सब स्थानो पर मिलता है। चार या आठ के झुंड मे ये जन्तु जगलो के बीच, घास वाली पहाड़ियो पर या चट्टानी जमीन पर घूमते देखे जा सकते है।

नील गाय :

घोडे की आकृति का यह जन्तु हिमालय के नीचे वाले भागो में पाया जाता है। नर का रग नीला भूरा या पिगल भूरा होता है और इसके गले से एक दाढी निकलती है। मादाएँ पिगल होती है। बेरो और अन्य पेडो की पत्तियाँ और खट्टे फल इसके विशेष भोजन है। यह खेती को बहुत हानि पहुँचाता है।

हिरन :

यह हिमालय के नीचे खुले छोटी घास वाले मैदानो में रहने वाला यूथचारी जन्तु है। मादा और युवा नर का रग पीठ और पार्श्वों पर हल्का पीला पिंगल तथा नीचे की ओर

सफेद होता है। वृद्ध नर काले होते हैं। ऊँचाई ३२ इन्च, लम्बाई ४ फीट और पूँछ लगभग ७ इन्च की है। इसका मांस बहुत रुचिकर समझा जाता है।

तिब्बती गजेला :

बड़ी-बड़ी आँखों वाला यह एक छोटे हिरन जैसा जन्तु तिब्बत मे, लद्दाख मे, नेपाल और सिक्किम के उत्तर मे सूने शीतस्थानो मे लगभग १३००० फीट से १८००० फीट ऊँचाई तक मिलता है। गर्मी मे रग भूरा तथा शीत में पीला पिगल होता है।

मृग :

मृग वंश के जन्तु हिरण से यह इस बात मे भिन्न है कि उनके सीग अस्थिर होते हैं और समय-समय पर पुराने सींग नये सीगों के द्वारा स्थानान्तरित हो जाते हैं। हिरणो के सीग स्थिर होते है। अधिकाश मृगो मे केवल नर जन्तु ही सीगधारी होता है किन्तु हिरणो मे मादाओ के भी सीग हो सकते हैं। काकड, बारहसिगा, साभर, चीतल और कस्तूरिया पाँच प्रकार के मुख्य मृग हिमालय मे पाये जाते है।

काकड़ :

घने जंगलों मे हिमालय पर लगभग ५००० या ६००० फीट ऊँचाई तक पाया जाता है। इसका मांस साधारण मृग के मांस से बहुत अच्छा समझा जाता है। बारहसिगा हिमालय के नीचे वाले खुले जगलो मे मिलता है। साभर सबसे बडे आकार का भारतीय मृग है जो कि ६००० या १०,००० फीट की ऊँचाई तक मिलता है। चीतल जिसके ऊपर सफेद चित्तियाँ होती है, हिमालय के नीचे वाले स्थानो मे पाया जाता हैं। कस्तूरिया मृग सारे हिमालय मे ८००० से १२००० फीट की ऊँचाई तक घने जगलो मे पाया जाता है। कस्तूरी तथा स्वादिष्ट माँस के लिए इसको जालो मे फँसाया तथा इसका अन्य प्रकार से शिकार किया जाता है।

सूअर :

दो प्रकार के सूअर हिमालय मे मिलते हैं—एक है साधारण जंगली सूअर और दूसरा है छोटा बौना सूअर।

साधारण जगली सूअर का कद लगभग ५ फीट लम्बा, २८ से ३६ इंच ऊँचा और लगभग १ फीट लम्बी पूँछ वाला जन्तु हिमालय में १५००० फीट की ऊँचाई तक

देखा गया है। दलदली स्थान इसको बहुत पसन्द है। दलदली पौधो की जड़ें इसका प्रिय भोजन है, किन्तु आवश्यकता पड़ने पर माँस भी खा लेता है। यह जन्तु खेती को बहुत हानि पहुँचाता है। बौना सूअर नेपाल, सिक्किम और भूटान के हिमालय के नीचे वाले भागो में मिलता है। रंग पिंगल या काला, लम्बाई २६ इच और ऊँचाई १ फीट के लगभग होती है।

सल्लू :

इसकी दो जातियाँ हिमालय पर मिलती है—एक है भारतीय सल्लू और दूसरी है चीनी सल्लू। इन जन्तुओ का सिर छोटा, लम्बा और नुकीला, मुख और आँखे छोटी होती है। सिर के ऊपर वाला भाग, शरीर, पीठ और पार्श्व, पूँछ तथा टाँगो और भुजाओ की बाहरी सतह सब पिंगल शल्को से ढकी है। शेष शरीर पर थोड़े-थोड़े बाल उपस्थित है। ये जन्तु पृथ्वी मे बिल बनाकर रहते है। ये बाहर को निकल आने वाली लम्बी जिह्वा से चीटी और दीमक पकड कर खाते है। आक्रमण होने पर ये सम्पूर्ण शरीर को एक गेंद की आकृति मे लपेट लेते है। शरीर लगभग २ फीट लम्बा तथा पूँछ लगभग सवा या डेढ फीट लम्बी हो सकती है। भारतीय सल्लू हिमालय के नीचे वाले भागो मे अधिकतर पश्चिम की ओर मिलता है। चीनी सल्लू हिमालय पर नेपाल की ओर मिलता है। चीनी सल्लू का शरीर अधिक सकीर्ण, शल्क छोटे और रग अधिक गहरा होता है।

श्रद्धानन्द वीथिका

पुरातत्त्व संग्रहालय, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

— ब्रजेन्द्र जैरथ
पुरातत्त्व संग्रहालय, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

श्रद्धानन्द वीथिका मे स्वामी श्रद्धानन्द जी, जिन्हे सुविख्यात गुरुकुल की आधार-शिला रखने का श्रेय प्राप्त है, के जीवन से सम्बन्धित चित्र बहुत सुरुचिपूर्ण ढग से प्रदर्शित हैं।

वह स्थान जहाँ पहले-पहल १६०२ मे स्वामी जी ने गुरुकुल की स्थापना की, काँगडी ग्राम पुण्यभूमि के नाम से जाना जाता है। लेकिन १६२४ ई. मे भयानक बाढ के कारण, जिसमे सम्पूर्ण विश्वविद्यालय तहस-नहस हो गया, गुरुकुल को जहाँ आज यह स्थित है, लाया गया। गुरुकुल की पहली इमारत, जो कि पुण्यभूमि मे रही, का चित्र भी यहाँ देखने को मिलता है।

इस वीथिका मे गुरुकुल और स्वामी जी के साथ-साथ उनके परिवार, उनके सहयोगियो के चित्र भी विविधता से प्रदर्शित किये गये हैं। स्वामी जी का वास्तविक नाम मुशीराम था। उन्होने अपनी जीविका एक वकील की हैसियत से शुरु की तथा नायब तहसीलदार से होते हुए तहसीलदार के पद तक पहुँचे। इसी क्रम से उनके चित्र इस वीथिका मे दिखाए गये है।

स्वामी जी के गुरु अथवा पद-प्रदर्शक महर्षि दयानन्द जी का चित्र भी यहाँ मौजूद है। इनके साथ ही साथ स्वामी जी के निकट सहयोगी ठाकुर माधवसिंह जी, श्री सुब्रह्मणियम जी, नामाद, भडारी शालिग्राम, लाला लाजपतराय, मदनमोहन मालवीय, मोतीलाल नेहरू, श्री पेटरसन, गोपालकृष्ण गोखले, श्री सी एफ एन्ड्रूज, डा० एम. ए. असारी, हकीम अजमल खाँ, श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि के चित्र भी यहाँ बखूबी दिखाए गये है।

१६१२ ई मे काँगडी गाँव में गुरुकुल की स्थापना के बाद वे आचार्य और फिर मुख्य अधिष्ठाता बने। मुशीराम जी एव उनके उद्देश्य का महत्त्व इसी से जाना जा सकता है कि सन् १६१६ मे स्वयं वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड और जेम्स मस्तन ने इस गुरुकुल का परिभ्रमण किया। तभी से यह कह सकते है कि गुरुकुल की पूर्णरूप से स्थापना

हुई। उसी समय से इसकी ख्याति देश मे दूर-दूर तक फैल गई।

आर्य समाज के संस्थापक दयानन्द सरस्वती के विचारो से प्रभावित स्वामी श्रद्धानन्द जी काफी हद तक महात्मा गाँधी से भी प्रभावित हुए। अगर स्वामी जी और महात्मा गाँधी की तस्वीरो और पत्राचार की तरफ ध्यान दे तो स्पष्ट हो जाता है कि इनके परस्पर काफी घनिष्ठ सम्बन्ध थे। स्वामी जी ने स्वाधीनता-संग्राम मे एक अहम भूमिका निभाई। गाँधी जी के साथ मिलकर आजादी की लडाई, स्वाधीनता संग्राम मे हिस्सा लिया। सन् १९१९ मे आप कांग्रेस कमेटी की अमृतसर बैठक के अध्यक्ष चुने गये। यह बैठक ऐसी संकट की घडी मे रखी गई, जबकि सम्पूर्ण भारत जलियाँवाला काण्ड से हतप्रभ और साथ-साथ अंग्रेजी शासन को निर्मम कूरता के प्रति गुस्से मे धधक रहा था।

६ अप्रैल सन् १९१७ को स्वामी श्रद्धानन्द जी ने सांसारिक जीवन को त्यागकर सन्यास आश्रम मे प्रवेश किया। सन्यासी-जीवन से सम्बन्धित सभी विभिन्न पहलुओ को वीथिका मे विविध-चित्रो की शक्ल मे प्रस्तुत किया गया है।

स्वामी जी का शुद्धि-आंदोलन मे महत्वपूर्ण योगदान रहा। हिन्दू पुनरुत्थान में उनकी गूढ निष्ठा थी। छुआ-छूत की भावना को दूर करने के लिए उन्होने अथक परिश्रम किया। उनका विचार था कि राजनैतिक स्वतन्त्रता से पहले सामाजिक कुरीतियो को मिटाना ज्यादा आवश्यक है। यही कारण था उन्होने हिन्दू-सस्कृति को ऊपर उठाने और आपसी एकता पर बल दिया। इसी कारण वे विवाद का विषय भी बन गये और कुछ कट्टर मुस्लिम उनके घोर आलोचक बन गये, जिसके फलस्वरूप उन्हे धमकियाँ भरे कुछ पत्र भी मिले, जिन्हे वे नजरअंदाज करते गये। मगर होनी तो पूर्वनिश्चित थी। बीमारी की हालत मे अब्दुल रशीद नाम के मुसलमान के हाथो वे गोलियो से भेद दिये गये। इस तरह आर्य समाज के एक बहुत ही महत्वपूर्ण अध्याय का दुर्भाग्यपूर्ण अन्त हुआ।

स्वामी जी के असख्य अनुयायियो का समुदाय था। भारत के एक महानतम पुत्र और अपने प्रिय नेता को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए उनकी अन्तिम यात्रा मे एक विशाल जनसमुदाय निकल पडा था। अब भी रोमाचित करते ये चित्र वीथिका मे देखने को मिलते है।

स्वामी जी के वस्त्र यहाँ शीशे के शोकेस मे सुरक्षित रखे हैं। स्वामी जी ने देश और विदेशो मे दूर-दूर तक भ्रमण किया। इन यात्राओ के दौरान उन्हे अपने शुभ-चिंतको से जाने कितने ही उपहार मिले जिन्हे उन्होने सग्रहालय को समर्पित कर दिया। ये सभी वस्तुएँ वीथिका के संरक्षण मे रखी हैं। इनमे से कुछ सजावटी वस्तुएँ है और कुछ कलाकृतियाँ उन्हे बर्मा से प्राप्त हुई है।

कुछ जानी-मानी प्रतिमाओ के चित्र भी यहाँ प्रदर्शित है। इनमे महर्षि दयानन्द सरस्वती, जामा मस्जिद मे धर्म-उपदेश देते हुए स्वामी जी, पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी, हंसराज जी, प. लेखराम जी, श्री स्वामी दर्शनानन्द जी और श्री स्वामी व्रजानन्द जी।

राष्ट्रभाषा का स्वरूप और आयाम

डा० विष्णुदत्त राकेश
हिन्दी विभागाध्यक्ष, गुरुकुल काँगडी विश्वविद्यालय

किसी राष्ट्र की सम्पूर्ण परम्पराओ और जीवन-धारणाओ का वहन करने वाली भाषा, जो विविधताओ मे एकता स्थापित करती है, राष्ट्रभाषा कहलाती है। देश की आत्मनिर्भरता और समृद्धि राष्ट्रभाषा पर निर्भर करती है। उसके अभाव मे देश गूँगा और जातियाँ पगु हो जाती है।

स्वामी दयानद और महात्मा गाधी ने इसीलिए कहा था कि जैसे अग्रेज अपनी मातृभाषा अग्रेजी मे ही बोलता है और व्यवहार करता है, वैसे ही प्रत्येक भारतीय को भारतमाता की एक भाषा बनाने का गौरव हिन्दी को देना चाहिए। इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमे अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। अग्रेजी की प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती सरोजिनी नायडू ने हिन्दी के समर्थन मे कहा था –"देश के सबसे ज्यादा हिस्से मे हिन्दी ही बोली जाती है। अगर हम साधारण बुद्धि से काम ले तब भी हमे पता चलेगा कि हमारी कौमी जबान हिन्दी ही हो सकती है।" यही कारण है कि १४ सितम्बर १९४९ ई० को सविधान सभा मे दक्षिणभारतीय सदस्य श्री गोपालस्वामी आयगर ने यह प्रस्ताव रखा कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाया जाए। सविधान सभा के अध्यक्ष डा० राजेन्द्रप्रसाद जी ने मतदान कराया और इस प्रस्ताव के विरुद्ध एक भी मत न आने से इस प्रस्ताव को सर्वसम्मति से स्वीकृत मान लिया। हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओ मे एक ही मिट्टी की उपज होने के कारण एक आतरिक सम्बन्ध है और यह भावात्मक तथा चेतनागत सम्बन्ध समस्त देश को विविधताओ के बावजूद एक बनाए हुए है। सम्पर्क-भाषा के रूप मे भी हिन्दी समर्थ है क्योकि पूरे देश मे उसे बोलने-समझने मे कोई कठिनाई नही है।

चेतनागत दृष्टि से भारतीय साहित्य मे मूलभूत एकता का दर्शन होता है। सस्कृत के बाद तमिल, तेलुगु, कन्नड, मलयालम, गुजराती, मराठी, बंगला, उडिया, असमिया, हिन्दी, उर्दू, पजाबी, सिधी तथा कश्मीरी मे भाषागत भिन्नता के रहते हुए भी अभूतपूर्व समानता लक्षित होती है। पजाबी, सिधी, हिन्दी तथा उर्दू की प्रादेशिक सीमाएँ एक-दूसरे से सटी हुई है तथा एक-दूसरे को प्रभावित करती हैं। गुजराती और मराठी,

बँगला, असमिया तथा उडिया भी एक-दूसरे के प्रभाव से ओतप्रोत है। सम्पूर्ण देश-वासियो ने एकता के होते हुए भी इन भाषाओ के वैशिष्ट्य को पृथक से स्वीकार किया है। तमिल का संगम साहित्य, तेलुगु का अवधान साहित्य, मलयालम का संदेश काव्य तथा कलिप्पाट्टु, मराठी का पवाडा, गुजराती का आख्यानफागु, बंगला का मंगलकाव्य, असमिया के बड़गीत और बुर जी साहित्य, पंजाबी के प्रेमाख्यान और वीर गीत, उर्दू की गजल तथा हिन्दी के भक्ति-गीत अलग-अलग पहचान रखते हुए भी मौलिक एकता से गूँथे हुए हैं, वैसे ही जैसे अनेक धर्मो, जीवनपद्धतियो और विचारधाराओ के रहते हुए भी भारतीयो की मूलभूत पहचान एक है। (भारतीय भाषाओ का पारिवारिक रूप यद्यपि भिन्न है पर उनकी साहित्यिक चेतना एक है।) हिन्दी ने अपनी इसी समन्वय और सम्पर्कजन्य प्रवृत्ति से इन भाषाओ के साहित्य की मूलचेतना का निर्वाह किया है और समान राजनीतिक, सास्कृतिक तथा साहित्यिक पृष्ठभूमि मे विकसित होकर एक समानता को जन्म दिया है। यही समानता भाषा के बाहरी ढाँचे की भिन्नता के बावजूद हिन्दी को अन्य भारतीय भाषाओ की सम्पर्क कडी बनाती है। अत: वीर-प्रशस्ति, नाथ संत वाणी, भक्ति-साहित्य, पुनर्जागरण, राष्ट्रीयता, समाजवादी समाज और लोकतत्र तथा आधुनिक विज्ञान की विचारधारा को स्वीकार करने के कारण हिन्दी तथा भारत की अन्य सभी भाषाएँ एक कुल मे आकर खडी हो जाती हैं। विशेषकर आधुनिक साहित्य का विकासक्रम हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं मे समान है। राष्ट्रीय आन्दोलन के देशव्यापी रूप को खड़ा करने मे हिन्दी ने अहम भूमिका अदा की, इसीलिए हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा मिला।

अंग्रेजीपरस्त लोगो ने हिन्दी और भारतीय भाषाओं के आन्दोलन को कमजोर करने के लिए तथा भारतीय जीवन की धुरी 'साधारण आदमी' को उपेक्षित करने के लिए राष्ट्रभाषा के स्वरूप और उसकी संभावनाओ को धूमिल करने का सुनियोजित षड्यत्र किया। आज यदि स्थिति का सर्वेक्षण किया जाए तो आप देखेंगे कि भारत मे ही नही अपितु बर्मा, लंका, ब्रिटिश गयाना, मलाया, त्रिनीदाद, इन्डोनेशिया, फीजी, मारीशस, नेपाल तथा अंडमान आदि स्थानो पर भी हिन्दीभाषा-भाषी उपलब्ध हैं। दुनियाँ के शिक्षणसंस्थानो में, अमेरिका, इंग्लैड, रूस, जापान, तथा चीन मे हिन्दी भाषा और साहित्य का अध्यापन होता है। अत. अब हिन्दी राष्ट्रविशेष तक सीमित न होकर पूरे विश्व मे फैल गई है।

कहा यह जाता है कि हिन्दी कविता की भाषा है, उसमें वैज्ञानिक, तकनीकी तथा प्रौद्योगिकी के सूक्ष्मविचारो को व्यक्त करने की सामर्थ्य नही है और इसका प्रमुख कारण है पारिभाषिक शब्दावली का अभाव। अत: राजकाज की भाषा के रूप मे हिन्दी का प्रयोग नही हो सकता। देश-विदेश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और वैज्ञानिक विचार-धाराओ को भी हिन्दी मे वहन करने का अभाव है और अब जब कम्प्यूटर पर कार्य होने

लगा है तब हिन्दी कैसे कामकाज की भाषा बन सकती है ? ऐसा आरोप वही लोग लगाते है जो विदेशी भाषाओ का वर्चस्व बनाए रख कर, भारतीय भाषाओ का अवमूल्यन करना चाहते है। हिन्दी से इतर भाषाभाषियो की सख्या कम है और हिन्दीभाषी सख्या मे अधिक है। अत: हिन्दी को राष्ट्रभाषा के गौरव से वचित करने के लिए हिन्दी तथा भारतीय भाषाओ मे भी स्पर्द्धा पैदा करने की कोशिश की जाती है। ऐसे लोग कहते हैं कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी की होड मे हिन्दी का सहारा लेकर आगे नही बढा जा सकता। हिन्दी को आप भावात्मक वस्तु समझे, यह अग्रेजी की तरह उपकरणभाषा नही हो सकती। मेरा कहना है कि क्या कविता, कला, सगीत, विज्ञान और तकनीक अलग-अलग संवेदनो से फूटते है और क्या इनके प्रादुर्भाव के लिए भिन्न-भिन्न शरीरतत्रो की आवश्यकता है। जब स्वभाषा मे कविता, कला फूटती है तो विज्ञान और तकनीक क्यो नहीं ? हिन्दी मे विज्ञान और तकनीक की उद्‌भावना क्यो नही हो सकती ? रही शब्दो की बात, तो आप शब्द गढते जाइए तो जो चलने वाले होगे, वे चल जाएँगे और शेष रह जाएँगे। हाँ, शब्द बनाते हुए यह अवश्य ध्यान रखना होगा कि नवनिर्मित शब्द वाँछित अर्थ के कितना निकट है। उदाहरण के लिए 'एयरकडिशन्ड' के लिए आपने वातानुकूलित शब्द बनाय और वह चल निकला, पर टेलीविजन के लिए 'दूरवीक्षण' शब्द नही चल सका लेकिन 'दूरदर्शन' लोकप्रिय हो गया।

विज्ञान के लिए हिन्दी मे शब्द गढने तथा वैज्ञानिक विषयो पर हिन्दी मे लिखने का काम 'प्रयाग की विज्ञान परिषद्' ने १६१३ मे शुरू किया था। हिन्दीमाध्यम से जनसाधारण तक विज्ञान को पहुँचाने के लिए 'विज्ञान' पत्रिका निकाली गई और आज भी ७० वर्ष से यह बराबर निकल रही है। रामदास गौड, सालिग्राम भार्गव, गोरखप्रसाद, फूलदेव सहाय, गोवर्धन शास्त्री, डा० सत्यप्रकाश, महेशचरण सिन्हा जैसे महानुभावो ने विज्ञान पर हिन्दी मे लिखना शुरू किया और स्वतत्रता के बाद तो 'कौंसिल आफ साइंटिफिक तथा इडस्ट्रियल रिसर्च' ने 'विज्ञान प्रगति' निकाल कर उच्चतम स्तर तक के विज्ञान की शिक्षा का माध्यम हिन्दी को बनाया। चीन मे तो विज्ञान के हर विषय का बृहद् साहित्य अपनी भाषा मे उपलब्ध कराया जाता है तथा उच्चतम स्तर का सब कार्य वहाँ की भाषा मे होता है। रूस मे अग्रेजी तथा अन्य भाषाओ मे छपे शोधकार्य का अनुवाद रूसी मे होता है तथा आंतरिक शोधसगोष्ठियो मे अपनी भाषा मे ही उन पर विचारविमर्श को प्रोत्साहित किया जाता है। अमरीका मे भी रूसी विज्ञान और तकनीक के बृहद् अनुवाद की योजनाएँ है। जापानियो की भी यही स्थिति है। हिन्दी मे भी चिकित्साशास्त्र, इन्जीनियरिंग, भौतिक तथा जैविक विज्ञान आदि के कार्य हिन्दी मे हो रहे है, पर अध्यापको तथा नीतिनिर्धारको की गुलामीवृत्ति के कारण हिन्दी को प्रोत्साहन नही मिल पा रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय मच पर राष्ट्रभाषा के लिए एक चुनौती आधुनिक ज्ञान- विज्ञान को आत्मसात करने की भी है। इसके लिए हिन्दी मे प्राधिकृत पारिभाषिक शब्दावली तैयार

करनी है। दृश्य-श्रव्य माध्यमो के लिए भी उपयुक्त शब्द गढने हैं। दिनमान में विदेशी घटनाओ पर टिप्पणी करते हुए आवश्यकतानुसार अज्ञेय जी ने अनेक ऐसे शब्दों का निर्माण किया जो सम्पर्कभाषा के रूप में हिन्दी के लिए जरूरी थे। पारिभाषिक शब्दो की एकरूपता पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। एटम को अणु, परमाणु या जीवाणु कहना तथा इस्पेक्टर को अधीक्षक, निरीक्षक या पर्यवेक्षक कहना अराजकता को पैदा करना है। इस दिशा मे शिक्षा मत्रालय द्वारा गठित वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग तथा केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा निर्मित विज्ञान, तकनीक, कृषि, वनविज्ञान, नृविज्ञान, रक्षा, खेलकूद, भूविज्ञान, प्रशासन, मनोविज्ञान, पुरातत्त्व, गृहविज्ञान आदि विषयों की शब्दावली तथा पारिभाषिक कोशो का उपयोग वाँछित होगा। विभिन्न राज्यो की हिन्दी अकादमियो तथा सरकारी और गैरसरकारी सस्थाओ ने भी अनेक ग्रन्थो का निर्माण कराया है। नौवहन, परिवहन, सचार, वाणिज्य, रक्षा, विधि, कार्मिक एव प्रशासनिक सुधार पर भी हिन्दी मे मौलिक एव अनूदित पुस्तके उपलब्ध है। दिन-प्रतिदिन के अनुसधानो का परिचय विज्ञान प्रगति पत्रिका, बाल विज्ञान, आविष्कार, पर्यावरण, वानस्पतिकी, भौतिकी, इजीनियरी, प्राणीलोक, आयुर्विज्ञान, आदि पत्रिकाओ मे मिलता रहता है। मुद्रणयत्रो तथा टकणयत्रो मे भी अपेक्षित सुधार हुआ है। श्री हरिबाबू कसल के विशेष प्रयत्न पर देवनागरी लिपि मे कम्प्यूटर निर्माण की बात भी उठी थी। जब रूसी, चीनी, अरबी तथा हिब्रू आदि लिपियो के कम्प्यूटर है, तो हिन्दी मे क्यो नही बन सकते? इस दिशा मे पहल हैदराबाद की इलैक्ट्रोनिक कारपोरेशन ने की थी, और जापान ने भी एक नमूना भारत के इलैक्ट्रोनिकी आयोग को भेजा था। १९८२ के एशियाड खेलो के विवरण कम्प्यूटर द्वारा हिन्दी और अग्रेजी मे सफलतापूर्वक प्रस्तुत किए गए थे।

यह बात सत्य है कि राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता के लिए तकनीकी स्वायत्तता होनी चाहिए। यह ध्यान मे रखकर सूचनासग्रह, मसाधन सप्रेषण के लिए टाइपराइटर, कम्प्यूटर, टेलीफोन, सैटेलाइट तथा कम्प्यूटर कम्युनिकेशन नेटवर्क जैसी तकनीके विकसित हुई। क्योकि देवनागरी कुंजीपटल, रोमन कुंजीपटल से भिन्न है, अत परिवर्द्धित देवनागरी पटल की सभावनाएँ बढ जाती है। वर्णसख्या, लेखनविधि तथा लेखनदिशा की भिन्नता से भी हिन्दी का कम्प्यूटर जटिल होगा। इस दिशा मे पिलानी, बगलूर, कानपुर मे काफी शोध हुआ है, पर लिपि डिजाइन, मानकीकरण, आगिक तथा प्रक्रियापक्ष, टाइपसैटिंग तथा ध्वनिपहचान यत्र की दृष्टि से अभी बहुत कुछ करना बाकी है। कम्प्यूटर की सहायता से हिन्दीशिक्षण का आयाम अभी बहुत कुछ अस्पष्ट है।

हिन्दी का एक और आयाम है—अनुवाद की अद्यतनता। आए दिन विश्व मे हो रहे अनुसन्धान, राजनीतिक बयानबाजी, साहित्य, कला, सस्कृति और प्राकृतिक घटनाओ का परिचय पाने के लिए देश-विदेश की सामग्री का अपनी भाषा मे परिचय अत्यावश्यक है। अत. स्वाभाविक ही किसी भाषा-भाषी को अपटूडेट होने के लिए द्विभाषी होना पड़ता

है, पाश्चात्य विज्ञान, टेक्नोलोजी, मानविकी तथा चिकित्सा की शोधसामग्री, यदि हिन्दी राष्ट्रभाषा है तो हिन्दी मे लानी होगी। इसके लिए अनुवाद की व्यवस्था बड़े पैमाने पर करनी होगी जो तुरन्त उस सामग्री को प्रस्तुत कर सके। अध्यापक, शोधार्थी, वैज्ञानिक तथा विद्यार्थी यदि हिन्दी के प्रयुक्तिपरक अध्ययन मे नही लगेगे तो लक्ष्य प्राप्त न कर सकेंगे। विधि या कानून की भाषा बनाने के लिए तथा न्यायिक सेवाओ मे प्रयोग के लिए हिन्दी को प्रोत्साहन देना होगा। राज्य सरकारे तथा क्षेत्रीय विश्वविद्यालय मिलकर यदि यह कार्य करेगे तो इस दिशा मे भी सफलता मिलेगी।

हिन्दी ने दूरदर्शन और रेडियो पर समाचार बुलेटिनो के प्रसारण मे भी सफलता प्राप्त की है। कृषि, सिंचाई, विद्युत, उत्पादन, स्वास्थ्य, शिक्षा, सासदिक गतिविधियाँ, राजनीतिक उलटफेर, भूकम्प, महामारी, पर्यावरण, खेलकूद, पर्वतारोहण, भेटवार्ता, डाक्यूमेंट्री फिल्म, अभिनय तथा सामान्य जीवन की अनेक सवेदनाओ को हिन्दी माध्यम से लाखो लोगो तक पहुँचाना होता है। हिन्दी ने इसके लिए विशेष शब्द गढे हैं। और यह कहने मे कोई संकोच नही, विश्वसवेदना को मुखर करने मे हिन्दी पूर्णतया समर्थ है। कमेंट्री की विधा मे भी हिन्दी लोकप्रिय हुई है। तात्पर्य यह है कि जनसचार के क्षेत्र मे भी हिन्दी की प्रगति उसे राष्ट्रभाषा के रूप मे प्रतिष्ठित करती है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के विश्वव्यापी होने मे एक साधन देवनागरी लिपि की भूमिका भी है। आज अग्रेजी के कारण रोमन लिपि विश्व मे स्वीकृत है पर रोमनलिपि की अ-वैज्ञानिकता सर्वविदित है। विनोबा जी का यह स्वप्न था कि नागरीलिपि को विश्व-नागरी का रूप दिया जा सकता है। उन्होने 'गीता प्रवचन' को इसीलिए भारत की सभी भाषाओ मे अपनी लिपि के साथ देवनागरी लिपि मे भी प्रकाशित कराया जिससे परस्पर भाषाओ को सीखने का अवसर लोगो को मिल सके। कुछ सकेतो को जोड़कर नागरी को तमिल, तेलगू, कन्नड और मलयालम लिखने योग्य बनाया जा सकता है तथा चीनी, जापानी, अरबी, फारसी भी कुछ सकेत और चिन्हो के साथ नागरी मे लिखी-पढी जा सकती हैं। इन भाषाओ के साहित्य का नागरी लिप्यतरण सरल है और ऐसा होने पर देवनागरी भारत तथा एशिया की भाषाओ को एक-दूसरे के निकट लाने मे खुले दरवाजे का कार्य करेगी।

अगर राष्ट्रीय और राजकीय सदर्भो मे हिन्दी प्रशासनिक प्रयोजनो और आर्थिक उद्देश्यो की पूर्ति मे सहायक होती है, तो बहुभाषी भारत को एकता के सूत्र मे जोड़कर सम्पर्कभाषा का कार्य भी कर सकती है। आज राष्ट्रभाषा का विचार करते हुए यह देखना होगा कि यदि हिन्दी के अतिरिक्त हम किसी दूसरी भाषा को वह दर्जा देते हैं तो क्या यह समूचे भारत की जातीय और सास्कृतिक आवश्यकता की पूर्ति कर सकती है? क्या उसका आतर-भारती रूप निर्मित हो सका है? क्या हिन्दी से बढ कर उसमे वैज्ञानिक और तकनीकी साहित्य निर्मित हुआ है? क्या राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय

मंच पर उसका प्रयोग किया जा सकता है और क्या उसकी लिपि कुछ थोडे-से परिवर्तनो के साथ भारतीय और एशियाई भाषाओ के लिप्यंतरण मे सहायक हो सकती है ? ये थोडे से वे विचारबिंदु है जिन्हे राष्ट्रभाषा के आयामो के रूप मे देखा जा सकता है। ये कितने स्पष्ट हैं और कितने अस्पष्ट, इसका निर्णय आपको खुले मन से करना है। मेरी राय मे हिन्दी यदि भारतीयस्तर पर प्रतिष्ठित हो जाती है और उसका भारतीय भाषाओ से आदान-प्रदान शुरू हो जाता है तो उसे विश्वमंच पर लाने की संभावनाएँ बढ जायेंगी। हिन्दी का अन्तर्राष्ट्रीयरूप इससे पहले विकसित नहीं हो सकता। उसके मानकरूप का निर्धारण विश्व की वर्तमान भाषाओ के संदर्भ मे होना चाहिए। हिन्दी अपने विकासक्रम मे भी किसी एक भाषा की पिछलग्गू नही रही है। वह साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, व्यापारिक और राजनीतिक माध्यम के रूप मे सक्षम रही है, पर जब हिन्दी को राष्ट्रभाषा, शासन की भाषा या सम्पर्क भाषा बनाने की बात उठी तो एक समझी जाने वाली हिन्दी के अनेक रूप हो गए और इसी स्थिति ने विवादो को पैदा कर दिया। आवश्यकता है, हिन्दी के मानकरूप की तलाश हो। वह सवैधानिक, प्रशासकीय और कार्यालयीय आदेशो-निर्देशो के साथ-साथ तमाम ज्ञान-विज्ञान का उच्चस्तरीय माध्यम बन सके तथा बहुभाषी देश की भाषाओ के मध्य सम्पर्क कडी का काम कर सके। अर्थात् स्वरूप की दृष्टि से राष्ट्रभाषा के तीन आयाम होगे— प्रशासन, उच्चशिक्षा और शोध तथा जनसम्पर्क। स्वतत्रता के बाद हिन्दी को दो प्रथम सदर्भ मिले और इन्ही सदर्भों के कारण उसकी सामर्थ्य को चुनौती भी दी गई। इन चुनौतियो को स्वीकार कर हिन्दी ने अपना रास्ता बनाया और वह युग-सदर्भ मे नये रूप मे ढली है। वह किसी भाषा का विकल्प नही, स्वतत्र अस्तित्व है जिसकी अपनी परम्परा है और अपनी प्रयोगधर्मिता है।

निकष पर

(पुस्तक-समीक्षा)

पुस्तक—शोध-संदर्भ—१
सम्पादक—डा० गिरिराज शरण अग्रवाल
डा० मीना अग्रवाल
प्रकाशक—हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर
पृष्ठ—६२०; डिमा० ८०;
मूल्य—१२०.०० रु०

भारतीय विश्वविद्यालयो मे स्वतत्रताप्राप्ति से पूर्व तक केवल आठ स्थानो पर हिन्दी विषय मे शोधकार्य हो रहा था। जिस वर्ष शोध-संदर्भ-१ प्रकाशित हुआ, उस वर्ष तक लगभग ७० विश्वविद्यालयो मे हिन्दी के उच्चतर अध्ययन और अनुसधान का कार्य सम्पन्न होने लगा। डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल को १६३४ ई० मे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने सर्वप्रथम डी० लिट्० की शोधोपाधि से विभूषित किया था। तब से लेकर आज तक लगभग नौ हजार विद्वान् पी-एच०डी० और डी० लिट्० की उपाधियो से विभूषित हो चुके है। इनमे से ४५०१ विवरण शोध-सदर्भ के प्रथम भाग मे प्रस्तुत किए गए हैं।

डा० उदयभानु सिंह ने बहुत पहले 'हिन्दी के स्वीकृत शोध प्रबन्ध' पुस्तक मे विभिन्न विश्वविद्यालयो मे स्वीकृत शोधप्रबन्धो की सूची सक्षिप्त-सार के साथ प्रस्तुत की थी, किन्तु यह कार्य एक निश्चित अवधि तक की सामग्री पर ही आधारित था। इसके अतिरिक्त शोधप्रबध के प्रकाशन, निर्देशन तथा प्राप्तिस्थान की सूचना भी इसमे नही थी। किन्ही कारणो से १६६४ के बाद फिर उस ग्रथ के सशोधित-परिवर्धित पुनर्मुद्रण भी नही हो सके। यो सभी विश्वविद्यालय अपने यहाँ के स्वीकृत शोधप्रबधो की सूचनाएँ प्रकाशित करते रहते है पर सभी विश्वविद्यालयो मे सम्पन्न शोधकार्य का एक स्थान पर विवरण उपलब्ध नही होता। अत इस अभाव की अनुभूति प्राय. सभी शोधार्थियो और शोध-निर्देशकों को हो रही थी। १६७६ मे भारतीय हिन्दी परिषद् प्रयाग के मुखपत्र

'हिन्दी अनुशीलन' का शोध-विशेषांक प्रकाशित हुआ। इसकी विशेषता यह थी कि इसमें हिन्दी शोध की सम्पूर्ण सूचनाएँ उपलब्ध करा दी गयी थी तथा विषयो का वर्गीकरण भी किया गया था। परिशिष्ट मे शोधकर्त्ताओ की नामानुक्रमणिका दी गयी थी। अन्य आवश्यक जानकारी के अभाव मे इस सूचीपत्र को पूर्ण सदर्भग्रंथ नहीं कहा जा सकता। अत इस क्षेत्र मे एक ऐसे सर्वांगपूर्ण ग्रथ की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी जो वर्गीकृत विषयो से लेकर शोधकर्त्ता तक की जानकारी एक स्थान पर उपलब्ध करा सके।

एम०फिल्०, पी-एच०डी०, डी० लिट्० के शोधार्थी यदि एक स्थान पर इस सारी सामग्री का परिचय प्राप्त करने की स्थिति मे हो तभी वे नयी शोध समस्याएँ और स्थापनाएँ प्रस्तुत कर सकते हैं। शोध की दिशा और दृष्टि तभी मिल सकती है। शोध की प्रतिज्ञा और रूपरेखा के निर्माण के लिये पूर्वप्रस्तुत सामग्री का अध्ययन अपेक्षित होता है, क्योकि विषय के प्रतिपादन के सतुलित विकास-क्रम के सूत्र इस वर्गीकृत वैचारिक ढाँचे मे बुने रहते है। रूपरेखा के स्वरूप को निर्धारित करने मे शोधक्षेत्र की मूलसामग्री का परिचय बडा महत्त्व रखता है। मूलसामग्री से सम्बन्धित तथ्यो के विवरण के अभाव मे शोधार्थी किस नवीन स्थापना का सकेत देगा ? शोधकार्य ज्ञानार्जन की प्रवृत्तिप्रक्रिया है। इस दिशा मे अध्यवसाय, तत्परता, क्षेत्रीय कार्यनिष्ठा तथा ज्ञान की प्रचण्ड लालसा रखने वाला व्यक्ति ही उपयोगी कार्य कर सकता है।

प्रसन्नता की बात है कि वर्द्धमान कालेज बिजनौर के हिन्दी प्राध्यापक डा० गिरिराज शरण अग्रवाल और उनकी पत्नी डा० मीना अग्रवाल ने १९८० तक के स्वीकृत हिन्दी शोधप्रबधो का विवरण आकलित कर, शोधसदर्भ के प्रथम भाग का प्रकाशन हिन्दी साहित्य निकेतन बिजनौर से कराया है। शोधसदर्भ का दूसरा भाग, जो ८० के बाद के कार्य से सम्बन्धित है, प्रकाशित हो चुका है। ६२० पृष्ठो के प्रथम भाग मे सम्पादकद्वय ने प्रवृष्टियो को सर्वांगता देने का पूरा प्रयत्न किया है। विवरण-क्रम इस प्रकार रखा गया है— क्रमाँक, प्रबन्धलेखक का नाम, जन्मतिथि अथवा वर्ष, शोध का विषय, विश्वविद्यालय या शोधसंस्थान का नाम, उपाधिप्राप्त का वर्ष, प्रकाशन का पूर्ण विवरण, शोध-निर्देशक का नाम तथा प्रबन्धलेखक का उपलब्ध पता। विषयो के वर्गीकरण मे भी सावधानी बरती गयी है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिककाल की प्रवृत्तियो, काव्यरूपो, सवेद्य बिन्दुओ तथा साहित्य और साहित्येतर मानको पर विवेचित, विश्लेषित शोधप्रबन्धो का वर्गीकरण इस ग्रथ मे है। यो काव्यशास्त्रीय, साधना-सम्प्रदायपरक, भाषिक सरचनाप्रधान तथा लोकजीवनपरक अध्ययनो का वस्तु, वाद-विचार तथा शैलीप्रधान विवरण प्रस्तुत करने मे सम्पादक ने सूझ-बूझ का परिचय दिया है, पर यदि शोधप्रबधो की मूलस्थापनाओ और निष्कर्षों का उल्लेख भी यथास्थान कर दिया जाता तो ग्रथ की उपयोगिता और बढ जाती। साहित्यकार-विशेष से सम्बन्धित शोधप्रबधो के विवरण देने मे सपादको ने जीवन-दर्शन, काव्य, भाषा, संस्कृति, समाज,

तुलनात्मक दृष्टि, संवेदना-शिल्प, सौन्दर्यशास्त्र तथा वैचारिक परिदृश्य से सम्बन्धित सामग्री का उपविभाजन भी कर दिया है, इससे शोधार्थी को उन दृष्टि-बिन्दुओ का परिचय मिल जाता है जिनके आधार पर शोधकार्य हो चुका है और नये कार्य की सभावना दृष्टिगत होने लगती है। परिशिष्ट मे हिन्दी शोधकार्य के स्थलो की सूची, शोधप्रबन्धो के प्रकाशकों की सूची और शोधार्थियो की नामानुक्रमणिका भी दी गयी है। इस तरह उपयोगी सामग्री से संवलित यह शोधसंदर्भ ग्रथ हिन्दी शोधार्थियो के लिए नितान्त सग्रहणीय और उपयोगी ग्रथ बन गया है। शोध की राह पर अग्रसर होने वालो के लिये यह ग्रथ मार्गदर्शक सिद्ध होगा। शोधकार्य मे मौलिकता के समावेश के लिए इस तरह के सदर्भग्रथो का अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

इस सग्रहणीय ग्रथ के सम्पादन और प्रकाशन के लिए सम्पादकद्वय बधाई के पात्र हैं।

—डा० विष्णुदत्त राकेश
